UNIVERSAL LIBRARY
OU_178861
UNIVERSAL LIBRARY

Osmania University Library

'8 Accession No. H 5411

२3A

नरोत्तमदास स्वामी

अलंकार - पारिजात 1957.

ok should be returned on or before the date last

.

अलंकार-पारिजात

[बी. ए. परीक्षा के लिए]

नरोत्तमदास स्वामी, एम.ए.
पीठाधिपति
राजस्थान ज्ञानपीठ, बीकानेर

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
शिक्षा साहित्य के प्रकाशक, आगरा–३

मूल्य : सात रुपये

सर्वश्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक, अम्पताल मार्ग, आगरा–३ द्वारा
प्रकाशित एवं जैनसम प्रिंटर्स, तकिया वजीरशाह, सेठगली, आगरा–३ द्वारा मुद्रि

अवतरणिका

लगभग २५ वर्ष पूर्व मैने 'अलंकार-परिचय' नामक एक छोटी-सी पुस्तक अलंकारों के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए लिखी थी। हिन्दी संसार ने, विशेषतः विद्यार्थी जगत् ने, उसका अच्छा स्वागत किया। उसके अब तक कोई ९ स्करण प्रकाशित हो चुके है।

उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियो के लिए भी वैसी ही एक पुस्तक तैयार कर देने की माँग बराबर आ रही थी। पुस्तक के प्रकाशक श्री राजनारायण अग्रवाल ने इस सम्बन्ध मे मुझे कई बार लिखा। आजकल-आजकल करते बहुत समय निकल गया और श्री राजनारायणजी का दुःखद देहान्त भी हो गया। उनके अनुरोध को पूरा न करने का हार्दिक दुःख हुआ और उनकी स्मृति की आराधना के लिए और सब कामों को भुलाकर इस काम को हाथ मे लेने का निश्चय किया। इस प्रकार इस प्रयास के साथ उस महान् आत्मा की स्मृति जुड़ी हुई है।

पुस्तक को छात्रों के लिए सब प्रकार से उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

अलंकारो, गुणों, दोषों, रसो और छन्दो के उदाहरणो को चुनने मे इस ात का ध्यान विशेष रूप से रखा गया है कि वे सुबोध और छोटे हों और ाथ ही भावपूर्ण हों जो सुभाषितों का काम भी कर सकें। प्रत्येक के पर्याप्त दाहरण दिये गये हैं।

अलंकारों और दोषों के प्रकरणों में विभिन्न अलंकारों और दोषों के अन्तप को उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

अलंकारों, दोषों और रसों के विवेचन के साथ सारणियाँ भी दी गयी है जिससे सब पर एक साथ विहंगम दृष्टि डाली जा सके।

८-५७

—नरोत्तमदास स्वामी

२८ विशेषोक्ति ७८
२९ विभावना ७९
३० व्याजस्तुति ८१
३१ उल्लेख ८२
३२ परिकर ८४
३३ परिकरांकुर ८५
३४ तद्गुण ८६
३५ अतद्गुण ८७
३६ पूर्वरूप ८८
३७ मीलित ८८
३८ उन्मीलित ८९
३९ सामान्यक ९०
४० विशेषक ९१
४१ परिसंख्या ९१
४२ यथासंख्य ९३
४३ मुद्रा ९५
(ग) पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अलंकार ९७
(८) अर्थालंकारों का पारस्परिक अन्तर १००
(९) अलंकारों की सारणी ११०

खण्ड २—शब्द-शक्ति

(१) शब्द के तीन प्रकार १३१
(२) अर्थ के तीन प्रकार १३१
(३) शब्द की तीन शक्तियाँ १३२
(४) वाचक शब्द के तीन प्रकार १३२
(५) वाच्यार्थ के दो भेद १३२
(६) लक्षणा के प्रकार १३३
लक्षणा के अतिरिक्त उदाहरण १३४
(७) व्यंजना के प्रकार १३४

खण्ड ३—काव्य-गुण और काव्य-रीति

(क) काव्य-गुण १३७
(१) प्रसाद १३७
(२) ओज १३८
(३) माधुर्य १३९
(ख) काव्य-रीति १३९
(१) वैदर्भी रीति १४०
(२) गौड़ी-रीति १४०

खण्ड ४—काव्य-दोष

(१) लक्षण १४२
(२) प्रकार १४२
(३) दोषों की निर्दोषता १४४
(४) कुछ प्रमुख दोष १४४
१ च्युतसंस्कृति १४४
२ श्रुतिकटु १४५
३ अप्रतीत १४६
४ क्लिष्ट १४६
५ ग्राम्य १४७
६ अश्लील १४७

७ न्यून-पद १४८
८ अधिक-पद १४९
९ अक्रम १४९
१० दुष्क्रम १५०
११ पुनरुक्त १५१
१२ हतवृत्त (छन्दोभंग) १५१
(५) काव्य-दोषों का पारस्परिक अन्तर १५३
(६) दोषों की सारणी १५६

खण्ड ५—रस

(१) रस और रस के भेद १५९
(२) रस-सामग्री १६०
(३) रस-विरोध १६६
(४) सात्विक भावों के उदाहरण १६७
(५) संचारी भावों के उदाहरण १६९
कुछ और संचारी भाव १७३
(६) रसों के उदाहरण १७५

खण्ड ६—छन्द

(१) गद्य और पद्य १८५
(२) वर्ण और मात्राएं १८६
(३) गण और उनके भेद १८९
(४) यति और गति १८९
(५) छन्दों के प्रकार १९०
छन्द भेदों का चित्र १९१
(६) प्रमुख छन्द १९२
(क) मात्रिक सम छन्द १९२
(ख) मात्रिक अर्धसम १९५
(ग) मात्रिक विषम १९६
(घ) आर्या-प्रकरण १९७
(ङ) वर्णिक सम छन्द १९८
(च) वर्णिक मुक्तक छन्द २०५
(छ) वर्णिक अर्धसम २०६

खण्ड १

अलंकार

(१) अलंकार का अर्थ

अलंकार शब्द का अर्थ है वह वस्तु जो सुन्दर बनाये या जो सुन्दर बनाने का साधन हो (अलंकरोति इति अलंकारः अथवा अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः)। साधारण बोलचाल में अलंकार 'गहने' को कहते हैं। गहने पहनने मे मनुष्य के शरीर की शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार काव्य के अलंकारों मे काव्य की शोभा बढ़ती है।

शब्द काव्य-पुरुष का शरीर है। अर्थ उसकी आत्मा है। जैसे पुरुष मे वीरता, उदारता, सुशीलता आदि आभ्यन्तर और सुन्दरता आदि बाह्य गुण होते हैं वैसे ही काव्य में काव्य-गुण होते हैं। जैसे स्नान-मार्जन, सुगन्धानुलेपन, माला-धारण, अलंकार-धारण आदि से पुरुष की सुन्दरता चमक उठती है वैसे ही काव्य के अलंकारों से काव्य का सौन्दर्य निखर जाता है। अलंकारों से काव्य अधिक रोचक हो जाता है और उसका भाव सहज ही हृदयंगम हो जाता है।

(२) काव्य में अलंकार का स्थान

अलंकार काव्य के लिए बहुत उपयोगी हैं। अलंकारों की सहायता से काव्य की रोचकता बढ़ जाती है। वह आकर्षक और साथ ही प्रभावशाली हो जाता है। अलंकारों से वर्ण्य विषय को स्पष्ट और सुबोध बनाने मे भी सहायता मिलती है। इस प्रकार अलंकारों की उपयोगिता असंदिग्ध है और काव्य मे उनका प्रयोग वांछनीय है। यह बात नही कि अलंकारो के बिना काव्य नही बन सकता; बन सकता है, और अच्छा बन सकता है; पर यह विशेष प्रतिभा-शाली कवि के लिए ही सम्भव है।

अलंकार भाषा के महत्वपूर्ण अंग हैं। साधारण पुरुष भी अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए अलंकारों का अनायास ही प्रयोग करते है।

पर साथ ही यह भी ध्यान में रहे कि अलंकार काव्य के लिए तभी उपयोगी होते हैं जब उनका प्रयोग सुरुचि के साथ किया जाय और उनकी 'अति' न की जाय। अलकार साधन है, साध्य नही। जब वे साधन के स्थान पर साध्य बन जाते हैं तब काव्य की शोभा बढाने के स्थान पर उसका ह्रास ही करते हैं।

(३) अलंकार क्या है ?

कथन या बात कहने के दो प्रकार होते हैं—(१) साधारण, और (२) असाधारण। असाधारण का अर्थ है निराला, वैचित्र्यपूर्ण, चमत्कारपूर्ण। कथन के असाधारण या चमत्कारपूर्ण प्रकार ही अलंकार है।

कथन के इन चमत्कारपूर्ण प्रकारों की संख्या बहुत बड़ी है। विद्वानों ने उनमें से कुछ का पता लगाकर उनके नाम नियत किये है। ये ही काव्य के अलंकार है।

(४) अलंकार के लक्षण

(१) कथन या बात कहने के असाधारण या चमत्कारपूर्ण प्रकारों को अलंकार कहते है।

(२) काव्य में शोभा और सौन्दर्य लाने वाले साधनों को अलंकार कहते है।

(३) जिन साधनों से काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न होता है उन्हें अलंकार कहा जाता है।

(४) काव्य-शोभा-करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।

(काव्य की शोभा करने वाली बातों को अलकार कहते हैं।)

(५) काव्य-शोभातिशय-हेतवः अलंकाराः।

(काव्य की शोभा की वृद्धि करने वाले साधन अलंकार है।)

(५) अलंकार के प्रकार

अलंकार दो प्रकार के होते है :

(१) शब्दालंकार—जब शब्द में चमत्कार हो; और

(२) अर्थालंकार—जब अर्थ में चमत्कार हो।

शब्दालंकार के उदाहरण

(१) **भ**गवान ! **भ**क्तों की **भ**यंकर **भू**रि **भी**ति **भ**गाइये।

इसमे 'भ' वर्ण कई बार आया है जिसमे यहाँ पर वृत्त्यनुप्रास अलंकार है।

(२) लसी कही थी सरसा सरोजिनी।
कु**मोदिनी** मानस-**मोदिनी** कही।।

इसमें 'मोदिनी' दो बार आने से यमक अलंकार हुआ।

(३) हे **उत्तरा** के धन ! रहो तुम **उत्तरा** के पास ही।

इसमे 'उत्तरा' शब्द दो बार आने से लाटानुप्रास अलकार हुआ।

(४) **पानी** गये न ऊबरै मोती मानुख चून।

इसमें 'पानी' शब्द के अनेक अर्थ होने से श्लेष अलंकार हुआ।

टिप्पणी—ऊपर के उदाहरणों मे जिन शब्दों में अलंकार है उनको निकाल-कर यदि उसी अर्थ के दूसरे शब्द रख दें तो अलंकार नही रह जायगा अर्थात् जो चमत्कार मालूम होता है वह नष्ट हो जायगा। जैसे :

उदाहरण (४) मे हम 'पानी' की जगह 'जल' रख दें तो श्लेष अलंकार मिट जायेगा क्योंकि 'जल' के वे सब अर्थ नही होते जो 'पानी' के होते है।

उदाहरण (२) में यदि हम 'मानस-मोदिनी' की जगह 'मानस-नन्दिनी' या 'मानस-ह्लादिनी' कर दें तो यमक अलंकार नही रह जायगा क्योंकि फिर 'मोदिनी' दो बार नही आता, यद्यपि वाक्य के अर्थ मे कोई अन्तर नही पड़ता।

इसी प्रकार पहले उदाहरण को यदि हम यों कर दें—

जगदीश ? भक्तों का सुदारुण डर अपार मिटाइये।

तो अर्थ वही रहने पर भी 'भ' का अनुप्रास नही रहेगा क्योंकि 'भ' कई बार नही आया।

अर्थालंकार के उदाहरण

(१) मुख मयंक सम मंजु मनोहर।

यहाँ मुख को चन्द्रमा के समान सुन्दर कहा गया है, अतः उपमा अलंकार हुआ।

(२) हरि-मुख-कमल विलोकिय सुन्दर ।

यहाँ मुख को कमल बताया गया है, अतः रूपक अलंकार है ।

अर्थालंकार मे वाक्य के शब्दों को बदलकर उनकी जगह उसी अर्थ के अन्य शब्द रख देने से अलंकार का चमत्कार नष्ट नही हो जाता किन्तु बना रहता है । जैसे—

ऊपर के उदाहरण (१) को बदलकर यदि हम यों कर दें—

सुन्दर बदन सुधाकर जैसा ।

तो भी उपमा अलंकार ज्यो-का-त्यों कायम रहेगा ।

इसी प्रकार उदाहरण (२) को बदलकर यदि यों कर दें—

प्रभु-बदनाबुज मजुल निरखिय ।

तो भी मुख और कमल का रूपक कायम रहेगा ।

(६) शब्दालंकार और अर्थालंकार में अन्तर

अर्थालिकार मे वाक्य के शब्दो को बदलकर पर्याय शब्द रख देने से अलंकार नष्ट नही होता । शब्दालंकार मे वाक्य के शब्दों को बदलकर पर्याय शब्द रख देने से, अर्थ न बदलने पर भी, अलकार नष्ट हो जाता है ।

(७) शब्दालंकार के मुख्य भेद

शब्दालंकार के मुख्य सात भेद हैं :

(१) अनुप्रास—जब वर्ण की आवृत्ति हो ।

(२) लाटानुप्रास—जब शब्द की आवृत्ति हो, अर्थ प्रत्येक बार अभिन्न हो, पर अन्वय प्रत्येक बार भिन्न हो ।

(३) पुनरुक्ति-प्रकाश—जब शब्द की आवृत्ति हो, अर्थ प्रत्येक बार अभिन्न हो और अन्वय भी प्रत्येक बार अभिन्न हो ।

(४) यमक—जब शब्द की आवृत्ति हो, पर अर्थ प्रत्येक बार भिन्न हो ।

(५) श्लेष—जब वाक्य में शब्द के एक से अधिक अर्थ हों ।

(६) वक्रोक्ति—जब कही गयी बात का दूसरा अर्थ किया जाय ।

(७) पुनरुक्तवदाभास—जब अर्थ की पुनरुक्ति जान पड़े पर वास्तव में न हो ।

*

(क) शब्दालंकार

१. अनुप्रास

अनुप्रास मे वर्ण या वर्ण-समूह अनेक (दो या अधिक) बार आता है।

उदाहरण

(१) भगवान् ! भक्तों की भयंकर भूरि भीति भगाइये।

इसमे 'भ' वर्ण छह बार आया है। यह एक वर्ण का अनुप्रास है।

(२) भगवान् ! भागें दु ख, जनता देश की फूले-फले।

इसमे 'भ' और 'ग' (भ-ग)—यह वर्ण-समूह दो बार आया है। इसी प्रकार अन्त मे 'फ' और 'ल' (फ-ल)—यह वर्ण-समूह भी दो बार आया है। यह दो वर्णो का अनुप्रास है।

(३) भरत-भारती मजु मराली।

इसमे भ, र, और त इन तीनों वर्णो का समूह दो बार आया है।

भेद

अनुप्रास के चार भेद होते है :

(क) छेकानुप्रास—वर्ण या वर्ण-समूह का दो बार आना।

(ख) वृत्त्यनुप्रास—वर्ण या वर्ण-समूह का तीन या अधिक बार आना।

(ग) श्रुत्यनुप्रास—एक स्थान से उच्चारण होने वाले बहुत-से वर्णो का प्रयोग होना।

(घ) अन्त्यानुप्रास—शब्दों या चरणो के अन्त मे अन्तिम दो स्वरो की, बीच के व्यंजन सहित, आवृत्ति होना।

(क) छेकानुप्रास

इसमे एक वर्ण या वर्ण-समूह की एक बार आवृत्ति होती है, अर्थात् वर्ण या वर्ण-समूह दो बार आता है।

उदाहरण

(१) परम पुनीत भरत-आचरनू।

(२) सब ओर छटा थी छायी।

(३) अति आनन्द मगन महतारी।

(४) **सेवा समय दैव** बन **दीन्हा** ।
मोर मनोरथ सफल न **कीन्हा** ।।
(५) **कानन कठिन भयंकर भारी** ।
घोर घाम हिम बारि बयारी ।।
(६) **पत्थर पिघले**, किन्तु **तुम्हारा तब** भी **हृदय हिलेगा** क्या ?
(७) **निपट निठुर हरि** को **हियो**, मो को **दियो** न **दाम** ।
(८) **हरि-सा हीरा** छाँड़ि **कै करैं आन** की **आस** ।
(९) **जाग** रही **जग** मे नव-आभा ।
(१०) **निर्मल नभ** में **देव दिवा**कर अग्नि-चक्र से फिरते है ।
(११) **किरण-कंटकों** से श्यामाम्बर फटा, **दिवा** के **दमके** अंग ।
(१२) किसी के **पंथ** मे **पलकें बिछाये** कौन **बैठा** है ?
(१३) **चेत** कर **चलना कुमारग** मे **कदम** धरना नही ।
बोध-वर्धक लेख लिखने मे कमी करना नही ।।

(ख) वृत्त्यनुप्रास

इसमे एक वर्ण या वर्ण-समूह की अनेक (एक से अधिक) बार आवृत्ति होती है ।

उदाहरण

(१) **भव्य भावों** मे **भयानक भावना भरना** नही ।

यहाँ 'भ' वर्ण कई बार आया है ।

(२) **किन्तु कलाधर** ने डाला है ।
किरण-जाल क्यो उसकी ओर ?

यहाँ 'क' वर्ण कई बार आया है ।

(३) **निपट नीरव नन्द-निकेत** मे ।

यहाँ 'न' वर्ण कई बार आया है ।

(४) **भटक भावनाओं** के **भ्रम** में **भीतर** ही था भूल रहा ।

यहाँ 'भ' वर्ण कई बार आया है ।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) **भाषा भाव भेष भोजन** मे **भारतीयता** का **अभिमान** ।
(२) **झांक** न **झंझा** के **झोंके** मे **झुककर** खुले **झरोखे** से ।

(३) इसी समय **पौ** फटी **पूर्व** मे, **पलटा प्रकृति-पटी** का रग।

(४) **चारु चन्द्र** की **चंचल** किरणें **खेल** रही थी जल-थल मे।

(५) **निर्ममता निरीह** पुरुषों मे **निस्संदेह निरखती** हो।

(६) **काले कुत्सित कीट का कुसुम** मे **कोई** नही **काम** था।

(७) **कल कालिंदी-कूल** की **कलित कला**-मय **केलि**।

(८) **गंधी गंध गुलाब** को **गँवई गाहक** कौन ?

(९) **कानन कूकि कै कोकिल कूर करेजन की किरचैं** करती क्यो ?

(ग) श्रुत्यनुप्रास

जब श्रुति की आवृत्ति हो, अर्थात् जब एक स्थान से उच्चारण होने वाले बहुत-से वर्णो का प्रयोग किया जाय।

उदाहरण

(१) दिनात था, थे दिननाथ डूबते।
सधेनु आते गृह ग्वाल-बाल थे॥

इसमे ये दन्त्य अक्षर आये है—

द न त थ थ द न न थ त।
स ध न त ल न थ॥

(२) तुलसीदास सीदत निसि-दिन देखत तुम्हारि निठुराई।

इसमे ये दन्त्य अक्षर आये है—

त ल स द स स द त न स द न द त त न।

टिप्पणी—अक्षरों के उच्चारण के स्थान इस प्रकार है :

अ आ क ख ग घ ङ ह	कण्ठ
इ ई च छ ज झ ञ य श	तालु
ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण र ष	मूर्धा
ऌ त थ द ध न ल स	दन्त
उ ऊ प फ ब भ म	ओष्ठ
ए ऐ	कंठ-तालु
ओ औ	कंठ-ओष्ठ
व	दन्त-ओष्ठ
ङ ञ ण न म	नासिका भी

(घ) अन्त्यानुप्रास

जब दो या अधिक शब्दों, या वाक्यों, या छन्दों के चरणों के अन्त में अन्तिम दो स्वरों की, बीच के व्यंजन-सहित (यदि हो तो), आवृत्ति हो।

उदाहरण

(१) नभ **लाली, चाली** निसा, चट**काली** धुनि कीन।

यहाँ **लाली, चाली** और **चटकाली** इन शब्दों के अन्त मे बीच के व्यंजन **ल्** के सहित अन्त के दो स्वरों (**आ** और **ई**) की आवृत्ति हुई है।

(२) दुखी **बना** मंजु--**मना** ब्रजां**गना**।

यहाँ **बना, मना** और **ब्रजांगना** शब्दों के अन्त मे बीच के व्यंजन **न्** के सहित अन्त के दो स्वरों (**अ, आ**) की आवृत्ति हुई है।

(३) जिसने हम सबको बना**या,** बात-की-बात मे वह कर दिखा**या**
कि जिसका भेद किसी ने न पा**या**।

यहाँ **बनाया, दिखाया** और **पाया** शब्दों के अन्त में बीच के व्यंजन **य्** के सहित अन्त के दो स्वरों (**आ, आ**) की आवृत्ति हुई है।

(४) तज प्राणों का मोह आज सब मिलकर **आओ**।
मातृभूमि के लिए बन्धुवर ! अलख ज**गाओ** ॥

इस पद्य के दोनों चरणों के अन्त मे अन्त के दो स्वरो (**आ, ओ**) की आवृत्ति हुई है। दोनों के बीच मे कोई व्यंजन नही है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) वेश-**भूषा** साज **ऊषा** आ गयी।
(२) **सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु** जाहि निरंतर गावैं।
(३) **आछे** दिन **पाछे** गये, हरि सों कियो न हेत।
(४) देखा जो दृग **खोल बोल** सुनके, तो **ढोल** में **पोल** थी।
(५) कोकिल-**कूकैं** लगै तन **लूकैं**,
उठै हिय **हूकैं** बिजोगिनि ती के ॥
(६) लगा दी किसने आकर **आग** ?
कहाँ था तू संशय के **नाग** !

वैणसगाई

जब छन्द के किसी चरण में प्रथम शब्द के प्रथम वर्ण की आवृत्ति अन्तिम शब्द के आदि, मध्य या अन्त मे हो।

उदाहरण

माता भूमी **मान**
पूजै राण **प्रतापसी**।

प्रथम चरण में प्रथम शब्द **माता** के प्रथम वर्ण **म्** की आवृत्ति अन्तिम शब्द **मान** के आदि में और द्वितीय चरण मे प्रथम शब्द **पूजै** के प्रथम वर्ण **प्** की आवृत्ति अन्तिम शब्द **प्रतापसी** के आदि मे हुई है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) अकबर समद अथाह,
तिहँ डूबा हिन्दू **तुरक**।
मेवाड़ो तिण **माँह**
पोयण फूल **प्रतापसी**॥

(२) **दीनानाथ** ! तुझ विण **दुख-रो**
किण-नै जाय पुकार **करा** ?

(३) **तांडै** साड **प्रतापसी**।

(४) **सुपन** समान **प्रतापसी**।

---

२. लाटानुप्रास

जब कोई शब्द अनेक (दो या दो से अधिक) बार आये, अर्थ प्रत्येक बार एक ही हो, परन्तु अन्वय प्रत्येक बार भिन्न हो (अर्थात् या तो भिन्न शब्द के साथ हो, या यदि एक ही शब्द के साथ हो तो भिन्न प्रकार का हो)।

उदाहरण

(१) हे **उत्तरा के** धन ! रहो तुम **उत्तरा के** पास में।

यहाँ **उत्तरा के** पद दो बार आया है। दोनों बार अर्थ वही है पर उसका अन्वय पहली बार **धन** के साथ और दूसरी बार **पास** के साथ होता है।

(२) पहनो कान्त ? तुम्ही यह मेरी जय**माला**-सी वर**माला** ।

यहाँ **माला** शब्द दो बार आया है। दोनों बार अर्थ एक ही है। पहली बार अन्वय **जय** के साथ और दूसरी बार **वर** के साथ होता है।

(३) **पूत** सपूत **तो क्यों धन संचै** ?
पूत कपूत **तो क्यों धन संचै** ?

यहाँ कई शब्द दो बार आये है, यथा—पूत, तो, क्यो, धन, सचै। प्रथम बार सबका अन्वय **सपूत** के साथ है और दूसरी बार **कपूत** के साथ।

(४) मिला **तेज** से **तेज, तेज** की वह सच्ची अधिकारी थी।

यहाँ पहले दोनों **तेज** शब्दो का अन्वय **मिला** क्रिया के साथ है, पर पहला **तेज** करण कारक मे और दूसरा **तेज** कर्ताकारक मे है, इस प्रकार अन्वय भिन्न हो गया है। तीसरे **तेज** का अन्वय **अधिकारी** शब्द के साथ है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) **चल** वैभव, संपति सु-**चल चल** जोबन, **चल** देह।
(२) **मनुष्य** ही **मनुष्य** का महान शत्रु आज है।
(३) जब **दया**वाले बने न **दया** दिखा,
तब **दया** का गान क्या करते रहे ?
(४) **अपना** कुछ भी न रहा **अपना**,
सपना वह पूर्व विकास हुआ ॥
(५) **रानी दासी बनी, बनी** यह **दासी** अब महा**रानी** थी।
(६) किन्तु प्राण**प्यारे** ! दृश्य न्यारे ये तुम्हारे बिना
प्यारे होकर भी हमे लगते न **प्यारे** है।
(७) **राम-भजन जाके** अहै, **विपति सुमंगल ताहि** ।
राम-भजन जाके नही, **विपति सुमंगल ताहि** ।

पूर्वार्ध मे 'विपति' कर्ता और 'सुमंगल' पूरक है, उत्तरार्ध मे 'सुमगल' कर्ता और 'विपति' पूरक है।

(८) राम-भजन जाके नहीं, जाति विपति ता पास ।
राम-भजन जाके, नहीं जाति विपति ता पास ।।

पूर्वार्ध मे 'नहीं' का अन्वय 'राम-भजन जाके' के साथ है और उत्तरार्ध मे 'नही' का अन्वय 'जाति विपति ता पास' के साथ है ।

(९) पराधीन जो नर नहीं, सुख-सम्पत्ति ता हेत ।
पराधीन जो नर, नहीं सुख-सम्पत्ति ता हेत ।।

---

३. पुनरुक्तिप्रकाश

जब शब्द की आवृत्ति हो, प्रत्येक बार अर्थ अभिन्न हो और अन्वय भी प्रत्येक बार अभिन्न हो ।

उदाहरण

(१) **गाँव-गाँव** अस होइ अनदा ।

यहाँ **गाँव** शब्द दो बार आया है, दोनों बार अर्थ वही है और अन्वय भी दोनों बार एकसा है (प्रत्येक बार **होइ** क्रिया का अधिकरण है) ।

(२) **मधुर-मधुर** मेरे दीपक ! जल ।

यहाँ **मधुर** शब्द दो बार आया है, दोनों बार अर्थ वही है और अन्वय भी एकसा है (प्रत्येक बार **जल** क्रिया का क्रियाविशेषण है) ।

(३) घनश्याम-छटा लखिकै सखियाँ !
अँखियाँ सुख **पाइहैं, पाइहैं, पाइहैं** ।

यहाँ **पाइहैं** शब्द तीन बार आया है, तीनो बार अर्थ वही है और अन्वय भी एकसा है (**अँखियाँ** कर्ता की क्रिया है) ।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) मयूरी ! **मधुवन-मधुवन** नाच ।

(२) फिर **सूनी-सूनी** साँझ हुई ।

(३) जब **प्यास-प्यास** कर धरती का **पौधा-पौधा** मुरझाता है ।

(४) घुमड़ रहे घन **काले-काले, ठंडी-ठंडी** हवा चली।
(५) नारी के प्राणों में ममता **बहती रहती, बहती रहती**।
(६) **विरह का जलजात** जीवन, **विरह का जलजात**।
(७) **आया, आया,** किसी भाँति वह दिन भी **आया**।
(८) **बनि-बनि-बनि** बनिता चली, **गनि-गनि-गनि** डग देत।
(९) हम डूब रहे दुख-सागर मे,
अब बाँह प्रभो ! **धरिये, धरिये**।
(१०) गुरुदेव ! जाता है समय। **रक्षा करो** ! **रक्षा करो** !

---

४. यमक

जब कोई शब्द अनेक (दो या दो से अधिक) बार आये और अर्थ प्रत्येक बार भिन्न हो। कभी-कभी पूरा शब्द दुबारा न आकर उस शब्द का कुछ अश दुबारा आता है, उस अवस्था मे भी यमक होता है।

उदाहरण

(१) मूरति मधुर मनोहर देखी।
भयेउ **विदेह विदेह** विसेखी।

यहाँ **विदेह** शब्द दो बार आया है। पहली बार अर्थ है राजा जनक और दूसरी बार है देह-रहित या देह की सुधि भूला हुआ।

(२) तीन **बेर** खाती ते वे तीन **बेर** खाती है।
बेर = (१) बार; (२) बेर नाम का फल।
(३) **कदंब** के पुष्प-**कदंब** की छटा।
कदंब = (१) एक पेड़ का नाम; (२) समूह।
(४) वना अतीवाकुल म्लान चित्त को
विदारता था तरु को**विदार** का।

इसमे **विदार** शब्दांश दो बार आया है। यह पूरा शब्द नहीं है। पहला **विदार** 'विदारता' का और दूसरा विदार 'कोविदार' का अंश है। यहाँ **विदार**

शब्दाश अर्थहीन है। शब्दांश के यमक मे दोनों शब्दांश अर्थहीन होते हैं। कभी-कभी एक शब्दांश और एक शब्द का यमक भी होता है। यथा—

(५) यों **परदे** की इज्जत **परदे**शी के हाथ बिकानी थी।

यह **परदे** का यमक है। पहला **परदे** स्वतन्त्र और सार्थक शब्द है और दूसरा **परदे** 'परदेशी' शब्द का अंश है।

(६) कु**मोदिनी** मानस-**मोदिनी** कही।

यहाँ **मोदिनी** का यमक है। पहला **मोदिनी** 'कुमोदिनी' शब्द का अंश है, एवं दूसरा स्वतन्त्र शब्द है जिसका अर्थ है प्रसन्नता देने वाली।

इस प्रकार यमक कई प्रकार का हो सकता है, यथा—

(१) सार्थक+सार्थक (प्रत्येक बार सार्थक) (उदाहरण १, २, ३)
(२) निरर्थक+निरर्थक (प्रत्येक बार निरर्थक) (उदाहरण ४)
(३) सार्थक+निरर्थक (उदाहरण ५), या
निरर्थक+सार्थक (उदाहरण ६)

अतिरिक्त उदाहरण

(१) **फूल** रहे **फूल**कर **फूल** उपवन मे।
(२) पछतावे की **परछाईं**-सी तुम भू **पर छाई** हो कौन ?
(३) फिर तुम **तम में**, मैं प्रिय**तम में**, हो जावें द्रुत अन्तर्धान !
(४) **जीवन** वन को, **जीवन** जन को, उमड़-उमड़ घन देता है।
(५) तन मे दिया उ**तार तार**कावलि का गहना।
(६) र**सिकता सिकता** सम हो गयी।
(७) आयो सखि ! **सावन** विरह सर**सावन**,
लग्यौ है बर**सावन** सलिल चहुँ ओर तें।
(८) अयि ! नित **कलपाता** है मुझे कान्त होके।
जिस बिन **कल पाता** है नही प्राण मेरा।
(९) **बसन** देहु, व्रज मे हमे **बसन** देहु व्रजराज !
(बसन = १. वस्त्र; २. बसने, रहने)
(१०) राधे-सी रूप-उजा**गरि नागरि**
सो गुन-आ**गरि नागरि** ढोवै।

(११) **सारँग** ले **सारँग** चली, **सारँग** पूगो आय।
सारँग ले **सारँग** धरचो, **सारँग सारँग** माँय ॥

(सारँग = १. घड़ा; २. सुन्दरी; ३. मेघ (वर्षा); ४. वस्त्र; ५. घड़ा; ६. सुन्दरी; ७. सरोवर)।

---

५. श्लेष

जब वाक्य में एक से अधिक अर्थ वाले शब्द या शब्दों का प्रयोग किया जाय और इस प्रकार एक से अधिक अर्थों का बोध कराया जाय।

उदाहरण

(१) बलिहारी नृप-कूप की **गुण** बिन बूंद न देहि।

(**अर्थ**—राजा और कूप गुण बिना कुछ भी नही देते।)

यहाँ **गुण** के दो अर्थ हैं—एक राजा के साथ लगता है और दूसरा कूप के साथ। राजा के साथ अर्थ है सद्गुण, और कूप के साथ रस्सी।

(२) **पानी** गये न ऊबरै मोती मानुख चून।

(**अर्थ**—पानी नाश हो जाने से मोती, मनुष्य और आटा किसी काम के नहीं रहते।)

यहाँ पानी के तीन अर्थ हैं—मोती के साथ आब या कान्ति; मनुष्य के साथ इज्जत या प्रतिष्ठा; आटे के साथ जल।

पानी के एक से अधिक अर्थ होने के कारण यहाँ श्लेप अलंकार हुआ।

(३) जहाँ **गाँठ** तहाँ **रस** नहीं, यह जानत सब कोइ।

ईख के साथ—गाँठ = ईख की पोर; रस = मीठा जलीय अंश।

मनुष्य के साथ—गाँठ = कपट, मनोमालिन्य; रस = प्रेम, आनन्द।

(४) नवजीवन दो घनश्याम ! हमें।

मेघ-पक्ष में—जीवन = पानी। घनश्याम = काला मेघ।

कृष्ण-पक्ष में—जीवन = जीना। घनश्याम = कृष्ण।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) साधु-चरित सुभ सरिस कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥

(२) विपुल धन, अनेकों रत्न, हो साथ लाये ।
प्रियतम ! बतला दो **लाल** मेरा कहाँ है ?
लाल = (१) लाल मणि; (२) प्यारा कृष्ण ।

(३) जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होय ॥
बारे = (१) जलाने पर; (२) बचपन मे ।
बढ़े = (१) बुझने पर, (२) बड़ा होने पर ।

(४) **सुबरन** को ढूंढत फिरैं कवि, कामी अरु चोर ।
सुबरन (सुवर्ण) = (१) सुन्दर अक्षर; (२) सुन्दर रूप, (३) सोना ।

(५) **विमलांबरा** रजनी-वधू अभिसारिका-सी जा रही ।
अंबर = (१) आकाश; (२) वस्त्र ।

टिप्पणी—श्लेष अर्थालंकार भी होता है । अर्थश्लेष मे शब्दों के अनेक अर्थ नहीं होते, परन्तु वे ऐसे होते है कि अनेक पक्षों में लग सकते है । अर्थालंकार-श्लेष में शब्दों को पर्याप्त-शब्दों से बदल देने पर भी चमत्कार बना रहता है ।

उदाहरण

(१) नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोय ।
जेतो **नीचो** ह्वै चलै, तेतो **ऊँचो** होय ॥
नीचो = (१) गहरा, (२) नम्र; विनयशील ।
ऊँचो = (१) ऊपर उठा हुआ; (२) उन्नत, बड़ा ।

(२) सत्यासक्त दयाल द्विजप्रिय अधहर सुखकंद ।
जन हित कमला-तजन जय शिव, नृप कवि हरिचन्द ॥

इस पद्य का अर्थ शिव, राजा हरिश्चन्द्र और कवि हरिश्चन्द्र इन तीनों पक्षों में लगता है । सत्यासक्त और द्विज शब्दों में शब्दश्लेष और शेष शब्दों में अर्थश्लेष अलंकार है ।

सत्यासक्त—(१) सती में आसक्त; (२) सत्य में आसक्त; (३) सत्य में आसक्त।

दयाल—(१-२-३) कृपालु।

द्विजप्रिय—(१) चन्द्रमा है प्रिय जिसको; (२-३) ब्राह्मण हैं प्रिय जिसको।

अघहर—(१-२-३) पाप-नाशक।

सुखकन्द—(१-२-३) सुख के मूल।

कमला-तजन—(१-२-३) लक्ष्मी का त्याग करने वाले।

---

६. वक्रोक्ति

जब किसी व्यक्ति के एक अर्थ में कहे गये शब्द या वाक्य का कोई दूसरा व्यक्ति जानबूझकर दूसरा अर्थ कल्पित करे।

इस दूसरे अर्थ की कल्पना श्लेष के कारण सम्भव होती है।

उदाहरण

(१) **भिक्षुक** गो कित को गिरिजे !
मो तो माँगन को बलिद्वार गयो री।

लक्ष्मी पार्वती से विनोद में पूछती है—हे गिरिजा ! तुम्हारा वह भिखारी (=शिव) कहाँ गया ? पार्वती लक्ष्मी के अर्थ को समझ लेती है पर विनोद का उत्तर विनोद में देने के लिए जानबूझकर भिखारी का दूसरा अर्थ (=विष्णु) कल्पित करती है (लगाती है) और उत्तर देती है—भिखारी कहाँ जायगा ? माँगने को गया है (राजा बलि के द्वार पर माँगने को विष्णु गये थे)।

यहाँ लक्ष्मी द्वारा एक अर्थ में कहे गये **भिक्षुक** (=शिव) शब्द का पार्वती ने दूसरा अर्थ (=विष्णु) कल्पित किया।

(२) है **पशुपाल** कहाँ सजनी ! जमुना-तट धेनु चराय रहो री।

लक्ष्मी कहती है—वह पशुपाल (=पशुपति=शिव का नाम) कहाँ है ?

पार्वती पशुपाल का दूसरा अर्थ पशुओं का पालक कल्पित करके उत्तर देती है—यमुना-तट के किनारे गायें चरा रहा होगा (विष्णु कृष्णावतार में यमुना-तट पर गायें चराते थे)।

(३) **खरी** होहु नेकु बारी ! कहा हमें खोटी देखी ?
सुनो **बैन** नेकु, मो तो आन ठाँ बजाइये।
दीजै हमें **दान** सो तो आज न परब कछू,
गो-रस दे, मो रस हमारे कहाँ पाइये ?
मही देहु हमें, सो तो मही-पति दैहै कोऊ,
दही देहु, दही है तो सीरो कछु खाइये।
'सूरत' कहत ऐसे सुनि-सुनि रीझे लाल,
दीन्हीं उर-माल, सोभा कहाँ लगि गाइये।

खरी = (१) खड़ी; (२) खरी, सच्ची, जो खोटी न हो। **बैनु** = (१) वचन; (२) वेणु, वंशी। **दान** = (१) राज्य-कर; (२) दान। **गो-रस** = (१) दूध; (२) गया हुआ रस। **मही** = (१) छाछ, (२) पृथ्वी। **दही देहु** = (१) दही दो; (२) देह जल गयी है।

बारी = हे बाला। **नेकु** = जरा। आन ठाँ = अन्य स्थान पर। परब = पुण्य-दिन। सीरो = ठंडा।

(४) कौन द्वार पर ? **हरि** मै राधे !
क्या वानर का काम यहाँ ?

राधा भीतर से पूछती है—बाहर तुम कौन हो ? कृष्ण उत्तर देते हैं—राधे ! मैं **हरि** हूँ। राधा हरि का अर्थ कृष्ण न लगाकर बानर लगाती है और कहती है कि इस नगर मे बानर का क्या काम ?

कृष्ण द्वारा एक अर्थ में कहे गये हरि शब्द का राधा दूसरा अर्थ बानर कल्पित करती है।

(५) हरि ! **अम्बर** देहु हमें कर में,
गहिये किन जो कर में नभ आवै।

अंबर—(१) गोपी का अर्थ = वस्त्र; (२) कृष्ण द्वारा कल्पित अर्थ = आकाश, नभ।

वक्रोक्ति अलंकार शब्दालंकार भी होता है और अर्थालंकार भी। प्रथम

दो उदाहरणों में वह अर्थालंकार है क्योंकि 'भिक्षुक' और 'पशुपाल' शब्दों को बदला जा सकता है।

कुछ विद्वान वक्रोक्ति का एक और भेद मानते है जिसे **काकु-वक्रोक्ति** नाम दिया गया है पर वह वस्तुतः गुणीभूत व्यग्य ध्वनि का एक प्रकार है। उसमे वक्ता द्वारा एक अर्थ में कहे हुए वाक्य का, श्रोता काकु द्वारा दूसरा अर्थ सूचित करता है (काकु = विशेष प्रकार का कंठ-स्वर)।

(१) आये हू मधुमास के प्रियतम ऐहैं नाहिं।
आये हू मधुमास के प्रियतम ऐहैं नाहिं ?

कोई विरहिणी कहती है कि वसन्त आने पर भी प्रियतम **नहीं आयेंगे**। सखी उन्हीं शब्दों का काकु से दूसरा अर्थ कल्पित करती है—वसन्त आने पर भी (क्या) प्रियतम नही आयेंगे ? अर्थात् **अवश्य आयेंगे**।

(२) एक कह्यो वर देत सिव, भाव चाहिए मीत।
सुनि कह कोउ, भोले भवहि भाव चाहिए मीत ?

एक ने कहा कि शिव वर देते है पर मन में भाव **होना चाहिए**। सुनकर दूसरे ने कहा—भोले शिव को भी क्या भाव चाहिए ? अर्थात् **नहीं चाहिए** क्योंकि वे इतने भोले है कि बिना भाव के ही वर दे डालते है। यहाँ 'भाव चाहिए' वाक्य का 'भाव नही चाहिए' यह दूसरा अर्थ कल्पित किया गया है।

(३) क्यों ह्वै रह्यो निरास, कहि-कहि 'नहिं हरिहै विपति'।
राखिय दृढ़ विसवास, हरि ह्वै नहिं हरिहै विपति ?॥

'हरि विपत्ति **नहीं हरेंगे**' यह कह-कहकर कोई व्यक्ति निराश हो रहा था। उसका मित्र उससे कहता है—निराश मत हो, दृढ़ विश्वास रखो, भगवान 'हरि' होकर भी क्या विपत्ति को नहीं हरेंगे ? अर्थात् **अवश्य हरेंगे**।

(४) कहु तजि रोसु राम-अपराधू।
सब कोउ कहत, राम सुठि **साधू**॥
राम **साधु**, तुम **साधु** सुजाना !
राम-मातु **भलि**, मैं पहिचाना॥

यहाँ दशरथ के कहे हुए 'साधु' शब्द का कैकेयी काकु द्वारा 'असाधु' यह दूसरा अर्थ कल्पित करती है।

इस काकु-वक्रोक्ति में वक्ता का कथन और श्रोता का प्रतिकथन दोनों आवश्यक हैं, विशेषकर श्रोता का प्रतिकथन जिसमें अन्य अर्थ की सूचना की जाती है। जहाँ केवल वक्ता का कथन होगा, अर्थात् स्वयं वक्ता काकु से दूसरा अर्थ सूचित करेगा वहाँ वक्रोक्ति अलंकार नही होगा। जैसे—

(१) आये हू मधुमास के प्रीतम ऐहै नाहिं ?

विरहिणी कहती है कि वसन्त के आने पर भी क्या प्रीतम नही आयेंगे ? अर्थात् **अवश्य आयेंगे**। यहाँ वक्ता व श्रोता का कथन-प्रतिकथन न होने से वक्रोक्ति अलंकार नही होगा।

(२) कहा न अबला करि सकै ?

कोई कहता है कि अबला नारी क्या नही कर सकती ? अर्थात् **सब कुछ कर सकती** है। यहाँ भी वक्ता-श्रोता का कथन-प्रतिकथन न होने से वक्रोक्ति अलंकार नही है।

---

७. पुनरुक्तवदाभास

जब अर्थ की पुनरुक्ति दिखायी पड़े पर वास्तव में पुनरुक्ति न हो।

उदाहरण

(१) देखो, **नीप-कदम्ब** खिला मन को हरता है।

यहाँ **नीप** और **कदम्ब** में एक ही अर्थ आभासित होता है और अर्थ की पुनरुक्ति जान पड़ती है पर वास्तव में पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि **नीप** का अर्थ है **कदम्ब** और **कदम्ब** का अर्थ है **समूह** (**नीप-कदम्ब = कदम्ब-वृक्षों** का समूह)।

(२) जन को **कनक सुवर्ण** बावला कर देता है।

यहाँ **कनक** और **सुवर्ण** में अर्थ की पुनरुक्ति दिखायी पड़ती है पर वास्तव में **कनक** का अर्थ है **सोना** और **सुवर्ण** का अर्थ है **सुन्दर वर्ण वाला**।

(३) **दुलहा बना** वसन्त, **बनी दुलहिन** मन भायी।

यहाँ **दुलहा** और **बना** में तथा **दुलहिन** और **बनी** में अर्थ की पुनरुक्ति दिखायी पड़ती है पर वास्तव मे **दुलहा** का अर्थ है **वर** और **बना** का अर्थ है **बना हुआ** या **शोभित हुआ**; या इसी प्रकार **दुलहिन** का अर्थ है **वधू** और **बनी** का अर्थ है **बनी** (अरण्यानी, रोही, जंगल)। (बना-बनी का अर्थ दुल्हा-दुलहिन भी होता है।)

अतिरिक्त उदाहरण

(१) **सुमन फूल** खिल उठे, लखो, **मानस** में **मन** में।

सुमन = फूल। फूल = प्रसन्नता। मानस = मान-सरोवर। मन = मन।

(२) निर्मल कीरति **जगत जहान**।

जगत = जाग्रत है। जहान = जगत मे।

(३) **अली भँवर** गूँजन लगे, होन लगे **दल-पात**।
जहँ-तहँ फूले **रूख तरु, प्रिय प्रीतम** कित जात?

अली = हे सखी; भँवर = भ्रमर। दल = पत्ते; पात = पतन। रूख = रूखे; तरु = पेड़। प्रिय = प्यारा; प्रीतम = पति।

शब्दालंकारों का अन्तर

(१) **अनुप्रास और लाटानुप्रास का अन्तर**—

(क) दोनों में आवृत्ति होती है।

(ख) अनुप्रास में वर्ण की आवृत्ति होती है।
लाटानुप्रास में शब्द की आवृत्ति होती है।

अनुप्रास—मुख मयंक सम मंजु मनोहर।

लाटानुप्रास—**अपना** कुछ भी न रहा **अपना**।

(२) लाटानुप्रास और यमक का अन्तर—

(क) दोनों में शब्द की आवृत्ति होती है ।

(ख) लाटानुप्रास मे शब्द की आवृत्ति होती है और अर्थ प्रत्येक बार अभिन्न होता है । यमक में शब्द की आवृत्ति होती है पर अर्थ प्रत्येक बार भिन्न होता है ।

लाटानुप्रास—अब **जीवन** मैं नहिं **जीवन** है ।

यमक—धन ! **जीवन** दो बरसाकर **जीवन** ।

जीवन = (१) जीवन; (२) पानी ।

लाटानुप्रास—आया **वर्षा-काल** का सखि ! यह रसमय **काल** ।

यमक—आया **वर्षा-काल** यह विरहि-जनो का **काल** ।

काल = (१) समय, ऋतु, (२) मरण ।

(३) यमक और श्लेष का अन्तर—

(क) दोनों मे एक शब्द के अनेक अर्थ होते है ।

(ख) यमक मे शब्द अनेक बार आता है और प्रत्येक बार भिन्न अर्थ होता है, इस प्रकार उसके अनेक बार मे अनेक अर्थ होते है । श्लेष में शब्द एक ही बार आता है और एक ही बार मे उसके अनेक अर्थ होते है ।

यमक—घन ! **जीवन** दो बरसाकर **जीवन** ।

जीवन = (१) जीवन; (२) पानी ।

श्लेष—नव**जीवन** दो घनश्याम ! हमें ।

जीवन = (१) पानी; (२) जीवन ।

(४) श्लेष और वक्रोक्ति का अन्तर—

(क) दोनों में किसी शब्द के अनेक अर्थ होते है ।

(ख) श्लेष में केवल इतना ही होता है कि शब्द के अनेक अर्थ हो, उसमें शब्द की अनेकार्थता ही प्रधान बात होती है । वक्रोक्ति में एक व्यक्ति द्वारा एक अर्थ मे कही गयी बात का दूसरे व्यक्ति द्वारा दूसरा अर्थ कल्पित किया जाता है । दूसरे व्यक्ति

द्वारा दूसरा अर्थ कल्पित किया जाना, यही वक्रोक्ति का प्रधान तत्व होता है। वक्रोक्ति के लिए केवल किसी शब्द के दो अर्थ होना ही पर्याप्त नही होता, दूसरे व्यक्ति द्वारा दूसरा अर्थ कल्पित किया जाना चाहिए।

श्लेष—नवजीवन दो **घनश्याम** ! हमें।

वक्रोक्ति—मैं हूँ **घनश्याम,** जाके बरसो गगन में।

घनश्याम = (१) कृष्ण; (२) काला बादल।

(ख) अर्थालंकार

अर्थालंकार के अनेक प्रकार है। उनमे दो महत्वपूर्ण हैं :

(१) **सादृश्य-मूलक या साधर्म्य-मूलक**—इनका आधार सादृश्य या साधर्म्य होता है, अर्थात् इनके मूल मे किसी-न-किसी प्रकार की समानता रहती है।

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, प्रतीप, भ्रान्ति, सन्देह, स्मरण, अपह्नुति, व्यतिरेक, दृष्टान्त, निदर्शना, समासोक्ति, अन्योक्ति आदि प्रमुख साधर्म्य-मूलक अर्थालंकार है।

(२) **विरोध-मूलक**—इनका आधार विरोध होता है, अर्थात् इनके मूल मे किसी-न-किसी प्रकार का विरोध रहता है। विरोध कई प्रकार का हो सकता है, जैसे वस्तु और वस्तु का विरोध, गुण और गुण का विरोध, क्रिया और क्रिया का विरोध, वस्तु और गुण का विरोध, वस्तु और क्रिया का विरोध, गुण और क्रिया का विरोध, कारण और कार्य का विरोध, उद्देश्य और कार्य का विरोध, इत्यादि।

विरोधाभास, असंगति, विभावना, विशेषोक्ति, विषम, व्याघात, अल्प, अधिक आदि प्रमुख विरोध-मूलक अलंकार है।

अर्थालंकारों के अन्यान्य प्रकार ये हैं :

(३) **शृंखला-मूलक**—एकावली, कारणमाला, मालादीपक, सार।

(४) **तर्कन्याय-मूलक**—काव्यलिंग, अनुमान।

(५) **काव्यन्याय-मूलक**—परिसंख्या, यथासंख्य, समुच्चय आदि।

(६) **लोकन्याय-मूलक**—तद्गुण, अतद्गुण, मीलित, उन्मीलित, सामान्य, विशेषक आदि।

(७) **गूढ़ार्थप्रतीति-मूलक**—सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति आदि।

१. उपमा

उपमा में किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के समान बताया जाता है।

दोनों वस्तुओं में कोई साधारण-धर्म, अर्थात् ऐसा गुण होता है जो दोनों में पाया जाता है। उस साधारण-धर्म के कारण दोनो मे समानता बतायी जाती है।

उपमा में ये चार बातें आवश्यक होती है :

(१) **उपमेय**—जो वर्णन का विषय हो और जिसको किसी अन्य के समान बताया जाय, अर्थात् जिसकी समानता किसी के साथ बतायी जाय।

(२) **उपमान**—कोई प्रसिद्ध वस्तु जिसके समान उपमेय को बताया जाय।

(३) **वाचक-शब्द**—वह शब्द जिसके द्वारा उपमेय और उपमान मे समानता बतायी जाय।

(४) **साधारण-धर्म**—वह गुण या क्रिया जो उपमेय और उपमान दोनों मे हो और जिसके कारण दोनो मे समानता बतायी जाय।

ये चारों कभी शब्दों द्वारा उल्लिखित होते हैं और कभी नही होते अर्थात् छिपे रहते हैं। तब इनका अध्याहार करना पड़ता है।

उपमा के उदाहरण

(१) मुख कमल के समान सुन्दर है।

इस उदाहरण में—

(१) मुख उपमेय है। (२) कमल उपमान है।
(३) समान वाचक-शब्द है। (४) सुन्दर साधारण-धर्म है।

(२) मुख कमल-सा खिल गया।

इस उदाहरण में—

(१) मुख उपमेय है। (२) कमल उपमान है।
(३) सा वाचक-शब्द है। (३) खिल गया साधारण-धर्म है।

उपमा के भेद

उपमा के दो भेद होते हैं—(१) पूर्णोपमा; (२) लुप्तोपमा।

(१) पूर्णोपमा

जब उपमा में उपमेय, उपमान, वाचक-शब्द और साधारण-धर्म इन चारो का शब्दों मे उल्लेख हो तब पूर्णोपमा होती है। जैसे—

(१) मुख कमल जैसा सुन्दर है।

इसमें—

(१) मुख उपमेय, (२) कमल उपमान,

(३) जैसा वाचक-शब्द, और (४) सुन्दर साधारण-धर्म है।

ये चारों यहाँ शब्दो द्वारा बताये गये है, इसलिए यहाँ पूर्णोपमा हुई।

(२) सागर-सा गम्भीर हृदय हो,
गिरि-सा ऊँचा हो जिसका मन।
ध्रुव-सा जिसका अटल लक्ष्य हो,
दिनकर-सा हो नियमित जीवन॥

इसमे—

(१) हृदय, मन, लक्ष्य, जीवन—उपमेय;

(२) सागर, गिरि, ध्रुव, दिनकर—उपमान;

(३) सा—वाचक-शब्द; और

(४) गम्भीर, ऊँचा, अटल, नियमित—साधारण-धर्म है।

चारों का शब्दों मे उल्लेख होने से पूर्णोपमा हुई।

(३) पत्ते-सा उड़ जाय तुम्हारे वायु वेग मे पड़ वह पामर।

इसमे—

(१) वह उपमेय, (२) पत्ता उपमान,

(३) सा वाचक-शब्द, और (४) उड़ जाय साधारण-धर्म है।

(४) कोमल कुसुम समान देह हा! हुई तप्त-अगारमयी।

इसमे—

(१) देह उपमेय, (२) कुसुम उपमान,

(३) समान वाचक-शब्द और (४) कोमल साधारण-धर्म है।

(२) लुप्तोपमा

जब उपमा में उपमेय, उपमान, वाचक-शब्द और साधारण-धर्म इन चारो

में से कोई एक या दो या तीन लुप्त हों अर्थात् उनका शब्द द्वारा उल्लेख न किया गया हो। जैसे—

(१) मुख कमल जैसा है।

यहाँ साधारण-धर्म सुन्दर का शब्द द्वारा उल्लेख नही किया है, अतः धर्म-लुप्तोपमा हुई।

(२) और किसी दुर्जय बैरी से, लेना हो तुमको प्रतिशोध।
तो आज्ञा दो, उसे जला दे कालानल-सा मेरा क्रोध।

इसमें—

(१) क्रोध उपमेय, (२) कालानल उपमान; और
(३) सा वाचक-शब्द है।

यहाँ पर साधारण-धर्म भयकर का उल्लेख नही है, अतः यहाँ धर्म-लुप्तोपमा हुई।

(३) उन पर जिसके है सोहती मुक्तमाला।
वह नव-नलिनी-से नेत्रवाला कहाँ है ?

इसमें—

(१) नेत्र उपमेय; (२) नलिनी उपमान; और
(३) से वाचक-शब्द है।

इसमे साधारण-धर्म **सुंदर** लुप्त है।

(४) कुलिस-कठोर सुनत कटु बानी।
बिलपत लखन, सीय, सब रानी॥

इसमें—

(१) कटु बानी उपमेय; (२) कुलिस उपमान; और
(३) कठोर साधारण-धर्म है।

यहाँ वाचक-शब्द लुप्त है, अत वाचक-लुप्तोपमा हुई।

(५) कुलिश-वचन कह कभी किसी का भाई ! जी न दुखाओ।

इसमें—

(१) वचन उपमेय; और (२) कुलिश उपमान है।

वाचक-शब्द और साधारण-धर्म (कठोर) दोनों लुप्त हैं, अतः यहाँ वाचक-धर्म-लुप्तोपमा हुई।

विशेष

१. जब उपमा में उपमेय एक, उपमान एक, और साधारण-धर्म अनेक हों, तो समोच्चयोपमा होती है। यथा—

(१) मुख कमल के समान सुन्दर और कोमल है।
(२) भरत, डरत, बूड़त, निरत, रहट-धरी लौ नैन।
(३) सरस, सु-कोमल, सौरभित हरि-मुख कमल समान।

२. उपमा के वाचक-शब्द—सा, जैसा, सदृश, सरिस, सरीखा, सम, समान, तुल्य, भाँति, तरह, प्रकार, ज्यों, लौं, इव, यथा इत्यादि।

अतिरिक्त उदाहरण

पूर्णोपमा—

(१) वन्दौं कोमल कमल-से जग-जननी के पाँइ।
(२) हँसने लगे तब हरि, अहा ! पूर्णेन्दु-सा मुख खिल गया।
(३) सिंधु-सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह।
(४) आकर अखिल विश्व के ऊपर प्रलय-घटा-सी छायी तू।
(५) लसित थी मुख-मण्डल पै हँसी।
विकच पंकज ऊपर ज्यों कला॥
(६) कर लो नभ-सा शुचि जीवन को।
(७) मधुकर-सरिस संत गुन-ग्राही।
(८) शोभा निकेत, अति उज्ज्वल, कान्तिशाली।
था वारि-बिन्दु जिसका नव मौक्तिको-सा॥

लुप्तोपमा—

(१) **पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।**
(२) मृत्यु का **प्रस्तर-सा उर** चीर प्रवाहित होता जीवन-नीर।
(३) जो झरते फूलों पर देता निज **चन्दन-सी ममता** बिखरा।

---

२. मालोपमा

जब उपमा में एक उपमेय के अनेक उपमान हों।

मालोपमा एक प्रकार का उपमा अलंकार ही है, अन्तर इतना ही है कि उपमा में उपमान एक ही होता है, मालोपमा में उपमान अनेक होते है। जैसे—

(१) मुख चन्द्र और कमल के समान है।

यहाँ मुख उपमेय के चन्द्र और कमल—ये दो उपमान कहे गये हैं।

(२) मुख चन्द्र-सा सुन्दर और कमल-सा कोमल है।

यहाँ भी मुख उपमेय के चन्द्र और कमल—ये दो उपमान कहे गये हैं, पर साधारण-धर्म दोनों के भिन्न हैं।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) मुख है सुन्दर चन्द्र-सो, कोमल कमल समान।

(२) कान्ह जिमि कंस पर, तेज तम-अंस पर,
तिमि अरि-वंस पर, सेर सिवराज है।

(३) नील सरोरुह, नील मनि, नील नीरधर स्याम।

(४) द्विरद-दंतो-से उठ सुन्दर,
सुखद कर-सीकर-से बढ़कर।
भूति-से शोभित बिखर-बिखर,
फैल फिर कटि के-से परिकर।
बदल यों विविध वेश जलधर,
बताते थे गिरि को गजवर॥

---

३. उपमेयोपमा

जब उपमेय और उपमान को एक-दूसरे से उपमा दी जाय, अर्थात् जब उपमेय को उपमान के समान बताकर फिर उपमान को उपमेय के समान बताया जाय।

उदाहरण

(१) तो मुख सोहत है ससि-सो, अरु
सोहत है ससि तो मुख जैसो ।
(२) कमल-से नैन, अरु नैन-से कमल हैं ।
(३) वे तुम सम, तुम उन मम स्वामी !
(४) अम्बर-गंग-सी है सरजू,
सरजू सम गंग-छटा नभ साजै ।
(५) औधपुरी अमरावति-सी,
अमरावति औधपुरी-सी विराजै ।
(६) भू पर भाऊ भुवप्पति को मन-सो कर,
औ कर-सो मन ऊँचो ।
(७) राम के समान संभु, संभु सम राम हैं ।
(८) वचन खलों के विषम गरल-से,
गरल विषम खल-वचन समान ।
(९) साह के सपूत दानी सिवसाह ! तेरो कर
सुर-तरु-सो है, सुर-तरु तेरे कर-सो ।

---

४. अनन्वय

जब उपमेय का उपमान न मिल सकने के कारण उपमेय को ही उपमान बना दिया जाय, अर्थात् जब उपमेय की उपमा उपमेय से ही दी जाय ।

उदाहरण

(१) अब यद्यपि दुर्बल आरत है ।
पर भारत के सम भारत है ।

यहाँ भारत उपमेय है और उपमान भी वही है, अर्थात् भारत को भारत की ही उपमा दी गयी है ।

(२) मुन्दर नन्दकिशोर-से मुन्दर नन्दकिशोर ।

सुन्दर नन्दकिशोर के समान सुन्दर नन्दकिशोर ही है । उपमान न होने के कारण उपमेय को ही उपमान बना दिया है ।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) लही न कतहुँ, हार हिय मानी ।
इन सम ये, उपमा उर आनी ।।

(२) हरि को मुख सखि ! हरि-मुख जैसो ।

(३) राम-से राम, सिया-सी सिया,
सिरमौर विरंचि विचारि सँवारे ।

(४) निरवधि जनु निरुपम पुरुष,
भरत भरत सम जान ।

(५) महा-महिम मान के समान मन ही है माना जाता ।

(६) मुकति की दाता माता ! तो-सी तू ही जग में ।

(७) करम-वचन-मानस विमल तुम समान तुम तात ।

(८) उपमा न कोउ, कह दास तुलसी, कतहुँ कवि-कोविद लहै ।
बल, विनय, विद्या, शील, शोभा सिंधु इन सम येइ अहैं ।

---

५. रूपक

जब एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाय, अर्थात् जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु का रूप दिया जाय, अर्थात् जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु बना दिया जाय ।

उदाहरण

(१) मुख कमल है ।

(२) मुख-कमल ।

इन उदाहरणों में मुख पर कमल का आरोप किया गया है, अर्थात् मुख को कमल का रूप दिया गया है, या यों कहिये कि मुख को कमल बना दिया गया है ।

(३) चरन-सरोज पखारन लागा ।

यहाँ चरणों को कमल बनाया गया है ।

(४) मयंक है श्याम बिना कलंक का ।

यहाँ श्याम को मयंक बनाया गया है ।

(५) उदित उदय-गिरि मंच पर, रघुबर-बाल-पतंग ।
विकसे सन्त-सरोज सब, हरखे लोचन-भृंग ॥

यहाँ मंच को उदयाचल, श्रीरामचन्द्र को बाल-सूर्य, सन्तों को कमल और लोचनों को भ्रमर बनाया गया है ।

(६) हिम-शृंगों को छोड़ रही है
दिनकर की किरणें क्षण-क्षण पर ।
तिरती हैं वे घन-नौका पर
नभ-सागर मे विविध रूप धर ॥

यहाँ किरणों को नौका पर बैठे यात्री, मेघों को नौका और नभ को सागर बनाया गया है ।

रूपक के भेद

रूपक के मुख्य तीन भेद होते है :

(१) सांग, (२) निरंग, (३) परंपरित ।

(१) सांग

जब उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाय और साथ ही उपमान के अंगों का भी उपमेय के अंगों पर आरोप किया जाय, अर्थात् जब उपमेय को उपमान बनाया जाय और उपमान के अग भी उपमेय के साथ बताये जायें ।

उदाहरण

(१) ऊधो ! मेरा हृदयतल था एक उद्यान न्यारा ।
शोभा देती अमित उसमे कल्पना-क्यारियाँ थीं ।
न्यारे-न्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों ।
उत्साहों के विपुल विटपी[1] मुग्धकारी महा थे ॥

---

१ पेड़ ।

लोनी[1]-लोनी नवल लतिका थी अनेकों उमंगें।
सद्वांछा के विहग उसमें मंजुभाषी बड़े थे।
धीरे-धीरे मधुर हिलती वासना-बेलियाँ थीं।
प्यारी आशा-पवन जब थी डोलती स्निग्ध होके॥

यहाँ हृदय को उद्यान बनाया गया है और उद्यान के अंग भी हृदय के साथ बताये गये हैं—

उद्यान	हृदय
क्यारियाँ	कल्पनाएँ
कुसुम	हृदय के विविध भाव
वृक्ष	उत्साह
लतिकाएँ	उमंगें
पक्षी	सद्वांछाएँ (सदभिलाषाएँ)
बेले	वासनाएँ
पवन	आशा

(२) निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी।
सच ही है श्रीमान भोगते सुख वन में भी॥
चन्द्रातप[2] था व्योम[3], तारका रत्न जड़े थे।
स्वच्छ दीप था सोम[4], प्रजा तरु-पुंज खड़े थे॥
शान्त नदी का स्रोत बिछा था अति सुखकारी।
कलम-कली का नृत्य हो रहा था मन-हारी॥

यहाँ कानन का रूपक राज्य के साथ बाँधा गया है—

राज्य	कानन
राजा	श्रीराम
चन्द्रातप	व्योम
रत्न	तारे

---

१ सुन्दर। २ चंदोवा, वितान। ३ आकाश। ४. चन्द्रमा।

दीप	चन्द्रमा
प्रजा	तरु-पुंज
बिछावन	शान्त नदी का स्रोत
नर्तकी	कमल-कली

(३) कौशिक[1]-रूप पयोनिधि[2] पावन।
प्रेम-वारि अवगाह सुहावन॥
राम-रूप राकेस[3] सिहारी।
बढ़ी बी चि[4]-पुलकावलि भारी॥

यहाँ विश्वामित्रजी को समुद्र बनाया गया है—

समुद्र	विश्वामित्र
पानी	प्रेम
चन्द्रमा	श्रीराम
लहर	पुलकावलि

(४) बरखा-रितु रघुपति-भगति, तुलसी सालि[5] सु-दास।
राम-नाम वर बरन[6] जुग सावन-भादों मास॥

यहाँ रामभक्ति का रूपक वर्षा के साथ बाँधा गया है—

वर्षा	रामभक्ति
धान	तुलसी जैसे रामभक्त
सावन-भादों	'राम' ये दो अक्षर

(५) ऊपर रूपक का उदाहरण सं. ५।

(२) निरंग

जब केवल उपमान का आरोप उपमेय पर किया जाय, अर्थात् उपमेय को उपमान बनाया जाय पर उपमान के अंगों को उपमेय के साथ न बताया जाय। यथा—

---

१ विश्वामित्र। २. समुद्र। ३. चन्द्रमा। ४. तरंग। ५. शालि, धान। ६. वर्ण, अक्षर।

(१) चरन-कमल मृदु मंजु तुम्हारे ।

यहाँ चरणों को कमल बनाया गया है, पर कमल के अंगों को चरणों के साथ नहीं बताया गया है ।

(२) हरि-मुख मृदुल मयंक ।

यहाँ मुख को चन्द्रमा बनाया गया है ।

(३-६) ऊपर रूपक के उदाहरण सं १-४ ।

(३) **परंपरित**

परंपरित में दो रूपक होते है और एक रूपक का कारण अथवा आधार दूसरा रूपक होता है ।

(१) आशा मेरे हृदय-मरु की मंजु मन्दाकिनी है ।

यहाँ दो रूपक हैं : एक हृदय और मरु का तथा दूसरा आशा और मन्दाकिनी का । आशा को मन्दाकिनी इसीलिए बनाया है कि पहले हृदय को मरु बना चुके थे । इस प्रकार इस रूपक का कारण एक दूसरा रूपक (हृदय और मरु का) है ।

(२) रविकुल-कैरव-विधु रघुनायक ।

यहाँ दो रूपक हैं । रविकुल को कैरव और रघुनायक को विधु बनाया गया है, पर रघुनायक को विधु इसलिए बनाया है कि पहले रविकुल को कैरव बना चुके थे । रघुनायक और विधु का रूपक रविकुल और कैरव रूपक पर आश्रित है ।

(३) किसके मनोज्ञ मुख-चन्द्र को निहारकर
प्रेम उर-सागर सदैव है उछलता ।

यहाँ पहले मुख को चन्द्र बनाया इसलिए फिर उर को सागर बनाया । 'उर-सागर' इस रूपक का आधार 'मुख-चन्द्र' यह रूपक है ।

(४) उदयो ब्रज-नभ आइ यह हरि-मुख मधुर मयंक ।

यहाँ पहले ब्रज को नभ बनाया, फिर हरि-मुख को मयंक बनाया । दूसरे रूपक का कारण पहला रूपक है ।

रूपक के अतिरिक्त उदाहरण

निरंग—

(१) उर अंकुरित **गर्व-तरु** भारी

(२) **मयंक है श्याम** बिना कलंक का ।

(३) वे स्वार्थ-वश हो **मोह की मदिरा** कभी पीते न थे ।

सांग—

(१) **अम्बर-पनघट** मे डुबो रही **तारा-घट ऊषा-नागरी** ।
(२) उदित **उदयगिरि-मंच** पर **रघुबर-बालपतंग** ।
बिकसे **संत सरोज** सब हरखे **लोचन-भृंग** ॥
(३) जितने **कष्ट-कंटकों** में है जिनका **जीवन-सुमन** खिला ।
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही अत्र तत्र सर्वत्र मिला ॥
(४) **जीवन की** चंचल **सरिता** मे फेंकी मैंने **मन की जाली** ।
फँस गयी मनहर **भावों की मछलियाँ** सुघर भोली-भाली ।
(५) **मृत्यु** एक **सरिता** है, जिसमें श्रम से कातर **जीव** नहाकर ।
फिर नूतन धारण करते है, **काया-रूपी वस्त्र** बहाकर ॥

परंपरित—

(१) **प्रेम-अतिथि** है खड़ा द्वार पर **हृदय-कपाट** खोल दो तुम ।
(२) **काल-कीट जीवन-प्रसून** को क्रमशः कर्तन करता है ।
(३) यह छोटा-सा शिशु है मेरा, **जीवन-निशि का शुभ्र सवेरा** ।

रूपक के अन्यान्य भेद

रूपक के दो भेद और किये जाते है—(१) अभेद, और (२) तद्रूप ।

(१) अभेद रूपक

जब उपमेय को उपमान का रूप दिया जाय और दोनों मे कोई भेद न रखा जाय ।

उदाहरण

मुख चन्द्रमा है

यहाँ पर मुख को चन्द्रमा का रूप दिया और दोनों में कोई भेद नही किया गया ।

ऊपर जितने उदाहरण दिये गये हैं वे सब अभेद रूपक के उदाहरण है ।

(२) तद्रूप रूपक

जब उपमेय को उपमान का रूप दिया जाय पर दोनों में कुछ भेद रखा जाय। यह भेद दूसरा, और, अपर, अन्य, दूजा आदि किसी अन्यार्थ-वाचक शब्द (ऐसा शब्द जिसका अर्थ अन्य या दूसरा हो) द्वारा प्रकट किया जाता है। (तद्रूप = उसके रूपवाला पर वह नहीं)

उदाहरण

(१) मुख दूसरा चन्द्रमा है।

यहाँ मुख को चन्द्रमा बनाया है, पर दूसरा चन्द्रमा है (वही चन्द्रमा नहीं) यह कहकर कुछ भेद रखा गया है।

(२) यह राजा दूसरा इन्द्र है।

यहाँ राजा को इन्द्र बनाया है पर दूसरा इन्द्र है यह कहकर कुछ भेद कर दिया गया है।

(३) अवधपुरी अमरावति दूजी,
दशरथ दूजो इन्द्र मही पर।

(४) बल-विभव में **कुरुराज** सचमुच **दूसरा सुरराज** है।

यहाँ कुरुराज (दुर्योधन) को सुरराज (इन्द्र) बनाया पर दूसरा इन्द्र है यह कहकर भेद कहा गया है।

अभेद रूपक के सम, न्यून और अधिक ये तीन भेद होते है। न्यून रूपक में उपमेय में उपमान की अपेक्षा कोई बात कम होती है। और अधिक रूपक में उपमेय में उपमान की अपेक्षा कोई बात अधिक होती है।

उदाहरण

(१) सम अभेद रूपक—मुख चन्द्रमा है।

(२) न्यून अभेद रूपक—(१) मयंक है श्याम बिना कलंक का।
(२) दुइ भुज के हरि रघुबर सुन्दर भेस।

प्रथम उदाहरण में श्याम को मयंक (चन्द्रमा) बनाया पर श्याम में चन्द्रमा की अपेक्षा कुछ न्यूनता बतायी कि चन्द्रमा में कलंक है, श्याम में कलंक नहीं है। द्वितीय उदाहरण में रघुबर (राम) को हरि (विष्णु) बनाया पर राम में विष्णु की अपेक्षा कुछ न्यूनता बतायी कि विष्णु के चार भुजाएँ हैं पर राम के दो ही भुजाएँ हैं।

(३) अधिक अभेद रूपक—

(१) सुवर्ण है श्याम सुगन्ध से भरा।

यहाँ श्याम को स्वर्ण बनाया पर श्याम में स्वर्ण की अपेक्षा यह बात अधिक बतायी कि श्याम में सुगन्धि है जबकि स्वर्ण में सुगन्धि नहीं होती।

(२) ये हाथी सजीव पहाड़ है।

यहाँ हाथियों को पहाड़ बनाया पर उनमे पहाड़ों की तुलना मे यह बात अधिक बतायी कि वे जीवन-सहित है जबकि पहाड़ जीवन से रहित होते हैं।

अधिक अभेद रूपक वस्तुतः व्यतिरेक अलंकार ही है।

टिप्पणी—कुछ आलकारिक तद्रूप रूपक के भी सम, न्यून और अधिक उपभेद करते है।

---

६. उत्प्रेक्षा

जब एक वस्तु मे दूसरी वस्तु की सम्भावना की जाय, अर्थात एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जाय।

दोनों वस्तुओं में कोई समान धर्म होने के कारण ऐसी सम्भावना की जाती है। सम्भावना करने के लिए कुछ शब्दो का प्रयोग किया जाता है जो उत्प्रेक्षा वाचक शब्द कहे जाते हैं। यथा—मानो, मनो, मनु, मनहुँ, जानो, जनु, सा इत्यादि।

उदाहरण

(१) नेत्र मानो कमल हैं।

नेत्र वास्तव में कमल नहीं है परन्तु मान लिया है कि वे कमल है।

(२) अम्बर में तारे मानो मोती अनगन हैं।

यहाँ पर तारों में मोतियों की सम्भावना की गयी है, अर्थात् तारों को मोती माना गया है।

(३) नाना-रंगी जलद नभ में दीखते है अनूठे ।
योधा मानो विविध रंग के वस्त्र धारे हुए है ।।

यहाँ अनेक रंग के मेघों में अनेक रंग के वस्त्र पहने हुए योद्धाओं की कल्पना की गयी है ।

(४) कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये ।
हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये ।।

यहाँ आँसुओं से भरे हुए उत्तरा के नेत्र मे ओस-कण-युक्त पकजों की सम्भावना की गयी है ।

(५) अति कटु बचन कहति कैकेई ।
मानहु लोन जरे पर देई ।।

यहाँ कटु वचन के कथन मे जले पर नमक लगाने की सम्भावना की गयी है, कटु वचन कहने को जले पर नमक लगाना माना गया है ।

उत्प्रेक्षा के भेद

उत्प्रेक्षा के तीन भेद होते है :

(१) वस्तूत्प्रेक्षा; (२) हेतूत्प्रेक्षा, और (३) फलोत्प्रेक्षा ।

(१) वस्तूत्प्रेक्षा

वस्तूत्प्रेक्षा में एक वस्तु मे दूसरी वस्तु की सम्भावना की जाती है, अर्थात् एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जाता है ।

(१) लसत मंजु मुनि-मंडली मध्य सीय-रघुचन्द ।
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भगति-सच्चिदानन्द ।।

यहाँ मुनि-मण्डली में ज्ञान-सभा की और सीताराम मे भक्ति एवं सच्चिदानन्द की सम्भावना की गयी है ।

(२) हरखि हृदय दशरथ-पुर आयी ।
जनु ग्रह-दशा दुसह दुखदायी ।।

यहाँ सरस्वती को अयोध्या की दुस्सह ग्रह-दशा माना है ।

(३) हरि-मुख मानो मधुर मयंक ।

(४) सोहत नभ स-कलंक ससि, मनु सर जलज स-भृंग ।

(५) सरद-ससी बरसत मनो घन घनसार अमंद ।

विशेष उदाहरण के लिए उत्प्रेक्षा के सामान्य उदाहरण देखिए ।

(२) हेतूत्प्रेक्षा

हेतूत्प्रेक्षा मे अहेतु मे हेतु की सम्भावना की जाती है, अर्थात् जो हेतु नही है उसे हेतु मान लिया जाता है।

(१) अरुण भये कोमल चरण भुवि चलिबे तें मानु।

कोमल चरण मानो पृथ्वी पर चलने से रक्तवर्ण हो गये। यहाँ चरणो के लाल होने का हेतु पृथ्वी पर चलना माना गया है यद्यपि यहाँ हेतु नही है, क्योंकि चरण पृथ्वी पर चलने से लाल नहीं हुए, वे स्वभावतः ही लाल थे।

(२) मुख सम नहिं, यातें मनो चन्दहि छाया छाय।

चन्द्रमा मुख के समान नही है मानो इसलिए उसको कालिमा छायी रहती है। कालिमा चन्द्रमा को इसलिए नही छाये रहती कि वह मुख के समान नही है, किन्तु यह एक प्राकृतिक बात है। फिर भी कालिमा के छाये रहने का कारण यह बताया गया है कि वह मुख के समान नहीं है। इस प्रकार यहाँ अहेतु को हेतु मान लिया है।

(३) मुख सम नहिं यातें कमल मनु जल रह्यो छिपाइ।

कमल जल में जाकर छिप गया। इसका कारण यह नही है कि वह मुख के समान नही होने के कारण लज्जित हो रहा था। फिर भी इसको कारण माना गया है। इस प्रकार यहाँ अहेतु मे हेतु की सम्भावना की गयी है।

(४) सोवत सीता-नाथ के, भृगु मुनि दीनी लात।
भृगुकुल-पति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात॥

राम ने परशुराम की गति का हरण कर लिया, पर इसका हेतु यह नही था कि परशुराम के पूर्वज भृगु मुनि ने विष्णु को लात मारी थी और यह बात राम को याद आ गयी थी।

(५) मनो कठिन आँगन चली, तातें राते पाँय।

(६) दुःख तुम्हारा देख कुमुद भी सकुचा, देखो।

(७) जा डूबा पश्चिम-सागर मे सिय-मुख से लज्जित हो चंद्र।

(८) देख विकलता मेरी विधु भी पीला पड़ा सखी! तू देख।

(६) वह मुख देख पांडु सा पड़कर
गया चंद्र पश्चिम की ओर।

(३) फलोत्प्रेक्षा

फलोत्प्रेक्षा में अफल में फल की सम्भावना की जाती है, अर्थात् जो फल (या उद्देश्य) नहीं होता उसको फल (या उद्देश्य) मान लिया जाता है।

(१) तब मुख समता लहन को जल सेवत जलजात।

मानो तुम्हारे मुख की समता प्राप्त करने को कमल जल मे खड़ा होकर तपस्या कर रहा है।

कमल जल में एक पैर अर्थात् कमल-नाल पर खड़ा रहता है, पर इस उद्देश्य से नही कि मुख की समता प्राप्त करे। मुख की समता प्राप्त करना उसका उद्देश्य नहीं है, वह इस फल को ध्यान में रखकर इस प्रकार खड़ा होने का कार्य नहीं करता। ऐसी आकांक्षा न होने पर भी इसकी सम्भावना की गयी है। अतः फलोत्प्रेक्षा है।

(२) रोज अन्हात है छीरधि मे सांस
तो मुख की समता लहिबे को।

चन्द्रमा सदा क्षीर-सागर मे मग्न होता है और उसका उद्देश्य यह नही होता कि मुख की समता प्राप्त करे। इस फल की कामना वह नही करता। पर माना गया है कि वह इसी फल की कामना करके ऐसा करता है। इस प्रकार यहाँ अफल को फल माना है जिससे फलोत्प्रेक्षा हुई।

(३) तव पद-समता को कमल जल सेवत इक पाँय।

(४) तेरे तन के वर्न के मानो होन समान।
सुवरन पावक में अहो! जारत अंग अपान॥

(५) मधुप निकारन के लिए मानो रुके निहारि।
दिनकर निज कर देत है सतदल-दलनि उघारि॥

(६) बढ़त ताड़ को पेड़ यह मनु चूमन आकास।

फलोत्प्रेक्षा है या हेतूत्प्रेक्षा, इसका पता कैसे लगाया जाय ?

प्रश्न कीजिए कि किस फल की कामना से कार्य किया गया है, या किस फल को पाने के लिए कार्य किया गया है। यदि उत्तर मिले तो फलोत्प्रेक्षा समझिए, नही तो हेतूत्प्रेक्षा।

जैसे, फलोत्प्रेक्षा का प्रथम उदाहरण लीजिए। हम प्रश्न करते है—कमल एक पैर पर खड़ा रहता है, कौनसा फल पाने के लिए ? उत्तर मिलता है मुख की समता पाने के लिए। उत्तर मिलने का कारण यहाँ फलोत्प्रेक्षा है।

अब हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण लीजिए। हम प्रश्न करते हैं—चरण लाल हो गये, क्या फल पाने के लिए ? इस प्रश्न का कोई उत्तर नही मिलता। फलतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा है।

---

७. प्रतीप

जब उपमेय के सामने उपमान का तिरस्कार किया जाय।

यह तिरस्कार कई प्रकार से किया जा सकता है। जैसे—

(क) उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बनाकर। उपमान सदा उपमेय से श्रेष्ठ होता है, श्रेष्ठ उपमान को उपमेय बना देना और अपेक्षाकृत हीन उपमेय को उपमान बना देना उपमान का तिरस्कार ही है।

(ख) उपमान को उपमेय की उपमा के अयोग्य बताकर।

(ग) उपमान को उपमेय के सामने अनावश्यक (व्यर्थ) बताकर।

(घ) प्रत्यक्ष रूप से।

उदाहरण

(क) उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बनाकर—

(१) सखि ! मयंक तव मुख सम सुन्दर।

यहाँ उपमान चन्द्रमा का तिरस्कार करने के लिए 'मुख चन्द्र के समान

सुन्दर है' यह न कहकर 'चन्द्र मुख के समान सुन्दर है' ऐसा कहा गया है, मानो मुख चन्द्रमा से कोई श्रेष्ठ वस्तु है। ध्यान रहे कि यहाँ प्रस्तुत या प्रसग का विषय या वर्ण्य मुख है, चन्द्रमा नही।

(२) नृप-प्रताप सम सूर्य है, जस सम सोहत चन्द।

यहाँ उपमान सूर्य का तिरस्कार करने के लिए 'राजा का प्रताप सूर्य के समान है' यों न कहकर 'सूर्य राजा के प्रताप के समान है' ऐसा कहा गया है। इस प्रकार उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बनाकर उपमान का तिरस्कार किया गया है।

(३) काहे करत गुमान मुख, मुख सम मंजु मयंक।

यहाँ पर भी उपमान चन्द्र को उपमेय और उपमेय मुख को उपमान बनाकर चन्द्रमा की हीनता सूचित की गयी है।

(ख) उपमान को उपमेय की उपमा के अयोग्य बताकर—

(४) का सरवरि तेहि देउँ मयंकू ?

उस (मुख) को चन्द्रमा की उपमा क्या दूँ ? अर्थात् चन्द्रमा उसकी उपमा के योग्य नही। यहाँ उपमान को उपमेय की उपमा के अयोग्य वताया गया है।

(५) कहिय राम सम किमि वैदेही ?

लक्ष्मी को सीता के समान कैसे कहा जाय ? अर्थात् लक्ष्मी सीता की उपमा के योग्य नही।

(६) सीय-बदन सम हिमकर नाही।

अर्थात् चन्द्रमा सीता के मुख की उपमा के योग्य नही।

(ग) उपमान को उपमेय के सामने अनावश्यक बताकर—

(७) मुख आलोकित जग करै, कहो चन्द केहि काम।

जब मुख जगत को प्रकाशित कर देता है तो चन्द्रमा की क्या आवश्यकता है ? वह व्यर्थ है।

(८) करै प्रकाश प्रताप तब, कहा भानु को काज ?

जब प्रताप ही प्रकाश कर देता है तो सूर्य व्यर्थ है।

(घ) प्रत्यक्ष रूप से—

(६) काहे करत गुमान ससि ! तव समान मुख मंजु ।

हे चन्द्रमा ! क्यो गर्व करता है, मुख तेरे ही समान सुन्दर है । यहाँ प्रत्यक्ष रूप से चन्द्रमा का तिरस्कार किया गया है ।

अतिरिक्त उदाहरण

(क) (१) अली ! मैथिली-वदन-सो जानि परै अरविन्द ।

(२) का घूँघट मुख मूँदहु, अबला नारि !
चाँद सरग पर सोहत, यहि अनुहारि ॥

(ख) (१) कंज विचारो ह्वै सकत सुघर न नैन समान ।

(२) तो मुख जैसो है कमल, कह्यो कवन विधि जाय ?

(३) सिय-मुख समता पाव किमि चन्द्र बापुरो रंक ?

(४) संत-हृदय नवनीत समाना ।
कहा कविन, पै कहइ न जाना ॥

(५) दृग आगे मृग-दृग न कछू री !

(६) इन दशनो अधरो के आगे क्या मुक्ता है, विद्रुम क्या ?

(७) मान महीपति के मन आगे
लगै लघु-काँकर-सो कनकाचल ।

(८) तव मुख सम ससि, यों कहै जे कवि ते मति-रक ।

(ग) कल्पवृक्ष केहि काम को, जब है नृप जसवत ।

(घ) पाहन ? जिय जनि गरब करि, हौ ही कठिन अपार ।
चित दुरजन के देखियत, तो सों लाख-हजार ॥

आवश्यक टिप्पणी—'हरि-मुख सो यह हँसि रह्यो, देखो, चंद अकास ।' इस उदाहरण मे प्रतीप अलंकार नहीं है क्योंकि यहाँ चन्द्रमा प्रस्तुत या प्रसंग का विषय या वर्ण्य होने के कारण उपमेय ही है, उपमान नही । पर यदि हरि-मुख प्रस्तुत हो तो प्रतीप अलंकार होगा ।

---

८. व्यतिरेक

जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कोई (भली या बुरी) बात अधिक बतायी जाय, अर्थात् जब उपमेय को उपमान से किसी बात मे बढ़कर बताया जाय ।

उदाहरण

(१) साधू ऊँचे शैल सम, किन्तु प्रकृति सुकुमार ।

यहाँ सज्जनों को पर्वतों के समान ऊँचा बताया गया पर उनमे यह बात अधिक बतायी गयी कि सज्जनों की प्रकृति कोमल होती है जबकि पर्वतों की प्रकृति कोमल नही होती, कठोर होती है ।

(२) मुख मयंक-सो है सखी ! मधुर वचन सविशेष ।

यहाँ मुख को चन्द्रमा के समान बताया गया पर उसमे चन्द्रमा की अपेक्षा यह अधिकता बतायी गयी कि उसमें मीठे वचन भी होते है ।

(३) विधि सों कवि सब विधि बड़े, यामें संशय नाहि ।
खट रस विधि की सृष्टि मे, नव रस कविता माहिं ।

यहाँ कवि की सृष्टि (कविता) मे ब्रह्मा की सृष्टि से तीन रस अधिक बताये गये हैं ।

(४) नव विधु विमल तात ! जस तोरा ।
उदित सदा, कबहूँ नहिं थोरा ॥

यहाँ भरत के यश को नवीन चन्द्रमा कहा गया है, पर उसमे यह बात अधिक बतायी गयी है कि वह दिन-रात उदित रहता है और कभी घटता नही, जबकि चन्द्रमा रात मे ही उदित रहता है और घटता भी है ।

(५) का सरवरि तेहि देउँ मयंकू ।
चाँद कलंकी, वह निकलंकू ॥

यहाँ कहा गया है कि उसके मुख को चन्द्रमा की उपमा क्या दी जाय ? चन्द्रमा में कलंक है और मुख निष्कलंक है, अतः मुख चन्द्रमा से बढ़कर है ।

टिप्पणी—(१) व्यतिरेक अलकार कभी उपमा के साथ, कभी रूपक के साथ और कभी प्रतीप के साथ भी आता है । ऊपर उदाहरण सं. १ और

२ में उपमा के साथ, सं. ४ में रूपक के साथ और सं. ५ में प्रतीप के साथ आया है।

(२) व्यतिरेक के रूपक के साथ आने पर अनेक आलंकारिक उसे अधिक रूपक मानते हैं।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) अवनी की ऊषा सजीव थी, अम्बर की-सी मूर्ति न थी।

(२) मम सुबरन, सुखमाकर, सुखद न थोर।
सीय-अंग सखि ! कोमल, कनक कठोर॥

(३) साहि के सिवाजी गाजी करचौ दिल्ली-दल माँहि,
पांडवन हूँ ते पुरुषारथ जु बढ़ि कै।
सूने लाख-भौन[1] तें कढ़े वे पाँच रात में जु,
द्यौस[2] लाख चौकी तें अकेलो आयौ कढ़ि कै॥

---

६. स्मरण

जब पहले देखी-सुनी हुई किसी वस्तु की, उसके समान किसी अन्य वस्तु को देख-सुनकर, स्मृति हो आये।

उदाहरण

(१) प्राची दिसि ससि उगेउ सुहावा।
सिय-मुख सुरति देहि ह्वै आवा॥

यहाँ सीता के मुख के समान चन्द्रमा को देखकर राम को सीता के मुख की स्मृति हो आयी।

(२) बीच बास करि जमुनहिं आये।
निरखि नीर लोचन जल छाये॥

यहाँ राम के समान श्याम-वर्ण यमुना के जल को देखकर भरत को राम की याद हो आयी।

---

१. लाक्षा-भवन। २. दिवस, दिन में।

(३) जो होता है उदित नभ में कौमुदी-कान्त आके।
प्यारा-प्यारा विकच मुखड़ा श्याम का याद आना।

यहाँ चन्द्र को उगा देखकर राधा को कृष्ण का प्रफुल्ल मुख याद आ जाता है।

(४) छू देती है मृदु पवन जो पास आ गात मेरा।
तो हो आती परम सुधि है श्याम-प्यारे करों की॥

यहाँ मृदु पवन का स्पर्श पाकर राधा को कृष्ण के हाथों के स्पर्श की याद हो आती है।

टिप्पणी—स्मरण अलंकार सादृश्य से उत्पन्न स्मृति होने पर ही होता है, किसी से सम्बन्ध रखने वाली वस्तु को देखने पर जब स्मृति होती है तब स्मरण अलंकार नहीं होता। जैसे—

आले में रक्खी वंशी को देख हृदय रो पड़ता है।

कृष्ण मे सम्बन्धित वंशी को देखकर यशोदा को कृष्ण की याद हो आती है और उसका हृदय रो उठता है।

स्मृति नाम का एक संचारी भाव भी होता है। वह सादृश्य-जनित स्मृति में भी होता है और सम्बद्ध-वस्तु-जनित स्मृति में भी। प्रथम अवस्था में स्मृति भाव और स्मरण अलंकार दोनों हो सकते है, जैसे उदाहरण संख्या २, ३ और ४ में। टिप्पणी मे दिये गये उदाहरण में स्मृति भाव तो है, पर स्मरण अलंकार नही है।

---

१०. भ्रान्तिमान्

जब सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम हो, अर्थात् जब उपमेय को भूल मे उपमान समझ लिया जाय।

उदाहरण

(१) जानि स्याम को स्याम-घन नाचि उठे बन मोर।

यहाँ मोरों ने कृष्ण को वर्ण-सादृश्य के कारण श्याम मेघ समझ लिया।

(२) ओम-बिन्दु चुग रही हंसिनी मोती उनको जान।

यहाँ हंसिनी को ओम-बिन्दुओं मे मोतियों की भ्रान्ति हो गयी।

(३) मनि-मुख मेलि डारि कपि देहीं।

राम ने बानरों को बिदा करते हुए अनेक उपहार दिये। रंग-बिरंगी **मणियों** को देखकर वानरों ने उन्हें **फल** समझा और मुँह में डाल लिया। जब कडी लगीं तो थूक दिया।

(४) चन्द अकास को वास विहाइ कै
आजु यहाँ कहाँ आइ उयो है?

किसी ने मुख को देखकर उसे चन्द्रमा समझ लिया।

(५) बेसर-मोती-दुति-झलक परी अधर पर आनि।
पट पोंछति चूनो समुझि नारी निपट अयानि॥

यहाँ नायिका अधरों पर पड़ी मोतियों की उज्ज्वल झलक को पान का चूना समझ लेती है और उसे पट से पोंछने का प्रयत्न करती है।

---

११. संदेह

जब सादृश्य के कारण एक वस्तु में अनेक वस्तुओं के होने की सम्भावना दिखायी पड़े और निश्चय न हो।

उदाहरण

(१) हरि-मुख यह आली ! किधौ, कैधौ उयो मयंक ?

हे सखी ! यह हरि का मुख है या चन्द्रमा उगा है ? यहाँ हरि के मुख को देखकर सखी को निश्चय नहीं होता कि यह हरि का मुख है या चन्द्रमा है। हरि के मुख में हरि-मुख और चन्द्रमा दोनों के होने की सम्भावना दिखायी पड़ती है।

(२) कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं।
राम-लखन सखि ! होहि कि नाहीं ॥

यहाँ भरत-शत्रुघ्न को देखकर ग्रामों की स्त्रियों को, सादृश्य के कारण, उनके राम-लक्ष्मण होने का संदेह होता है।

(३) तारे आसमान के हैं आये महमान बनि,
केशों में निशा ने मुकतावली सजायी है ?
बिखर गयो है चूर-चूर ह्वै कै चन्द कैधौं,
कैधौं घर-घर दीप-मालिका सुहायी है ?

यहाँ दीप-मालिका में तारावली, मुक्तामाला और चन्द्रमा के चूर्णीभूत कणों का सन्देह होता है।

(४) चमकत कैधौं सूर सरजा-दुधारा किधौं
सहर सतारा को सितारा चमकत है ? ॥

यह शिवाजी का खड्ग चमक रहा है या सतारा नगर (शिवाजी की राजधानी) का भाग्य-सूचक सितारा (नक्षत्र) ?

(५) कैधौं रितुराज काज अवनि उसाँस लेत,
किधौं यह ग्रीषम की भीषण लुआर है ?

ये ग्रीष्म-ऋतु की भयंकर लू की लपटें है या वसन्त के विरह में पृथ्वी के अन्तस् मे निकलती हुई विरह-दुःख की आहें ?

(६) ये हैं सरस ओस की बूंदें, या हैं मंजुल मोती ?

(७) ये छींटे हैं उड़ते, अथवा मोती बिखर रहे हैं ?

(८) आः ! बाण थे वे, या भयंकर पक्षधारी व्याल थे ?

टिप्पणी—या, अथवा, कि, किधौं आदि **या** का अर्थ देने वाले शब्द **सन्देह के वाचक शब्द** होते हैं।

---

१२. अपह्नुति

जब उपमेय का निषेध करके उपमान का होना कहा जाय।

(क) शुद्धापह्नुति—

(१) अरी सखी ! यह मुख नहीं, यह है अमल मयंक।

यहाँ मुख को देखकर कहा कि यह मुख नहीं, चन्द्रमा है। इस प्रकार उपमेय का निषेध करके उपमान का होना कहा गया।

(२) ये पलाश के पुष्प नहिं, ये जलते अंगार।

(३) किरण नहीं, पावक के कण ये जगती-तल पर गिरते हैं।

(४) अंग-अंग जारत अरी, तीखन ज्वाला-जाल।
सिन्धु उठी बडवाग्नि यह, नहीं इन्दु भव-भाल॥

चन्द्र को देखकर कहा गया कि यह चन्द्र नहीं, बड़वाग्नि है। इसका कारण बताया गया कि यह अंग-अंग को जलाता है, परन्तु चन्द्रमा शीतल होता है और जलाता नहीं, अतः बड़वाग्नि है।

(ख) पर्यस्तापह्नुति—

(५) सुधा सुधा प्यारे ! नहीं, सुधा अहै सत्संग।

सुधा सुधा नहीं, सच्ची सुधा तो सत्संग है। यहाँ सुधा का गुण सुधा से हटाकर सत्संग में रखा गया।

(६) यह न चाँदनी, चाँदनी है विहँसनि नँदलाल।

(७) चन्द चन्द आली ! नहीं, राधा-मुख है चन्द।

(ग) छेकापह्नुति—

(८) अरध रात वह आव भौन।
सुन्दरता बरनै, कहि कौन ?
देखत ही मन होय अनन्द।
क्यो सखि ! पिय-मुख ? ना सखि ! चन्द॥

नायिका प्रियतम के मुख का वर्णन कर रही थी। फिर उसी बात को छिपाने के लिए एक झूठी बात बना दी कि मैं तो चन्द्र की बात कर रही हूँ।

(९) 'आज देख घनश्याम-छटा को मन में मग्न हुई'।
'मिले कहाँ सखि ? श्याम ?', 'मेघ की मैंने बात कही'॥

गोपी कृष्ण-मिलन की बात कर रही थी। फिर उसी बात को छिपाने के लिए झूठी बात बना दी कि मै तो घनश्याम—काले मेघ—की बात कर रही थी। यहाँ उपमेय कृष्ण का निषेध करके उपमान मेघ का होना कहा गया है।

(घ) कैतवापह्नुति—

जब बहाने से, मिस, ब्याज आदि शब्दों द्वारा उपमेय का निषेध करके उपमान का होना कहा जाय।

(१०) मुख के मिस, देखहु, उग्यो यह निकलंक मयंक।

यहाँ मुख का वर्णन है। कहा गया है कि यह मुख नही है, चन्द्रमा है जो उगा है।

(११) नूतन पवन के मिस प्रकृति ने साँस ली जी खोल के।

यह नूतन पवन नहीं है, प्रकृति की साँस है।

(१२) निपट नीरव ही मिस ओम के
रजनि थी दुख-अश्रु गिरा रही।

वह ओम नही गिर रही है, रात के दुःख से उत्पन्न आँसू हैं जो गिर रहे है।

(१३) ओम-बिन्दु के मिस रजनी भी दुख के आँसू गिरा रही।

टिप्पणी—नहीं और **न** शब्द अपह्नुति के वाचक शब्द है। **बहाने** (से), **मिस** (से), **ब्याज** (से) आदि शब्द कैतवापह्नुति के वाचक-शब्द है।

भ्रान्तापह्नुति

कुछ आलंकारिक अपह्नुति का एक और भेद भ्रान्तापह्नुति भी मानते हैं। यह छेकापह्नुति का विपरीत होता है।

भ्रान्तापह्नुति में किसी की भ्रान्ति को दूर करने के लिए उपमान का निषेध करके उपमेय का होना कहा जाता है।

'आज देख घनश्याम-छटा को मन में मग्न हुई'।
'कहाँ सखी ! घन आज ?', 'श्याम की मैंने बात कही' ॥

गोपी कृष्ण की बात कर रही थी। उसकी सखी को भ्रम हो गया कि मेघ की बात कह रही है। तब वह सच्ची बात बताकर सखी के भ्रम को दूर करती है। यहाँ उपमान मेघ का निषेध करके उपमेय कृष्ण का होना कहा गया है।

---

१३. दीपक

जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत को एक ही धर्म से अन्वित किया जाय।

उदाहरण

(१) **सोहत** मुख कल हास सों, अमल चन्द्रिका चन्द।

यहाँ प्रस्तुत मुख और अप्रस्तुत चन्द्र दोनों को एक ही धर्म 'सोहत' से अन्वित किया गया है।

(२) भूपति सोहत दान सों, फल-फूलन उद्यान।

यहाँ भूपति और उद्यान को एक ही धर्म 'सोहत' से अन्वित किया गया है।

(३) **काहू के केहूँ घटाये घटै नहिं** सागर औ गुन-सागर प्रानी।

यहाँ प्रस्तुत गुणवान प्राणी और अप्रस्तुत सागर को 'कभी किसी के घटाये नही घटते' इस एक ही धर्म से अन्वित किया गया है।

(४) कामिनी कन्त सों, जामिनी चन्द सों,
दामिनी पावस मेघ-घटा सों।
जाहिर चारहुँ ओर जहान **लसै**
हिंदवान खुमान सिवा सों॥

यहाँ प्रस्तुत हिंदवान और अप्रस्तुत कामिनी, यामिनी तथा दामिनी चारों का एक ही धर्म 'लसै' आया है।

(५) डूँगर केरा बाहला, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहै उँतावला, छिटक दिखावै छेह॥

यहाँ अप्रस्तुत पहाड़ी नाले और प्रस्तुत ओछों के प्रेम का एक ही धर्म कहा

गया है कि वे बहते हैं तो बड़ी तेजी से बहते हैं पर उनका अन्त शीघ्र ही आ जाता है।

टिप्पणी—अप्रस्तुत एक से अधिक भी हो सकते हैं। उदाहरण ४ में प्रस्तुत एक और अप्रस्तुत तीन हैं।

---

१४. तुल्ययोगिता

जब अनेक प्रस्तुतों को, या अनेक अप्रस्तुतो को, एक ही धर्म से अन्वित किया जाय। (एक ही = common, सबके साथ समान रूप से पाया जाने वाला)।

उदाहरण

(१) गुरु, रघुपति सब मुनि मन माहीं।
मुदित भये, पुनि-पुनि पुलकाहीं॥

यहाँ विश्वामित्र, राम और मुनि इन प्रस्तुतों को एक ही धर्म 'मुदित भये' और 'पुनि-पुनि पुलकाहीं' से अन्वित किया गया है।

(२) सब कर संसय अरु अज्ञानू।
मन्द महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब-गरुआई।
सुर-मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोच, जनक पछितावा।
रानिन्ह कर दारुन दुख-दावा॥
संभु-चाप बड़ बोहित पाई।
चढ़े जाइ सब संग बनाई॥

यहाँ निम्नलिखित अनेक प्रस्तुतों (वर्ण्य वस्तुओं) का एक धर्म यह बताया गया है कि वे शम्भु-चाप रूपी बड़े जहाज पर जा चढ़े—

(१) सब लोगों का संशय और अज्ञान; (२) दुष्ट राजाओं का अभिमान;

(३) परशुराम का बड़ा गर्व; (४) देवताओं और मुनियों का भय; (५) सीता की चिन्ता; (६) जनक का पश्चात्ताप; (७) रानियों की दुःखाग्नि।

राम ने धनुष-रूपी जहाज को तोड़ दिया तो वे सब यात्री डूब गये, अर्थात् ये सब बातें नष्ट हो गयी।

(३) कलिंदजा के सु-प्रवाह की छटा,
विहग-क्रीड़ा, कल-नाद-माधुरी।
नहीं बनाती उनको विमुग्ध थीं
अनूपता कुंज-लता-वितान की॥

(४) सरोवरों की सुषमा- सु-कजता,
सुमेरु की, निर्झर की, सुरम्यता।
न थी यथातथ्य उन्हें विमोहती
अनन्त-सौन्दर्य-मयी वनस्थली॥

उक्त दोनों उदाहरणों में अनेक प्रस्तुतों का एक ही धर्म कहा गया है।

(५) चन्दन, चन्द, कपूर, नव सित अम्भोज, तुषार।
तेरे यश के सामने लगते मलिन अपार॥

यहाँ चन्दन, चन्द्र, कपूर, श्वेत कमल और तुषार इन अप्रस्तुतों (उपमानों) का एक ही धर्म 'मलिन लगते' कहा गया है।

(६) **विलोक तेरी नव रूप-माधुरी**
नहीं किसी को लगती लुभावनी।
मयंक-आभा, अरविंद-मालिका,
हंसावली, हास-प्ररोचना उषा॥

यहाँ अनेक अप्रस्तुतों का एक ही धर्म 'नही लगती लुभावनी' कहा गया है।

---

१५. सहोक्ति

जब दो विजातीय बातों को 'साथ' शब्द या उसके किसी पर्याय शब्द द्वारा एक ही क्रिया या धर्म से अन्वित किया जाय।

टिप्पणी—साथ और साथ का अर्थ देने वाले शब्द सहोक्ति के वाचक शब्द होते है।

उदाहरण

(१) नाक पिनाकहि **संग सिधायी**।

धनुष के संग नाक भी चली गयी (धनुष टूटने के साथ दूसरे राजाओं की प्रतिष्ठा भी जाती रही)। यहाँ नाक और धनुष—इन दो विजातीय वस्तुओं को 'संग' शब्द द्वारा एक ही क्रिया 'सिधायी' से अन्वित किया गया है (उनका एक ही साथ जाना कहा गया है)।

(२) भृगुनाथ के गर्व के **साथ** अहो !
रघुनाथ ने सभु-सरासन **तोरयो**।

यहाँ परशुराम का गर्व और शिव का धनुष—इन दो विजातीय वस्तुओं को एक ही क्रिया 'तोरयो' से अन्वित किया गया है।

(३) दक्खिन को सूबा पाइ दिल्ली के अमीर **तजैं**
उत्तर की आस, जीव-आस, **एक संग ही**।

यहाँ उत्तर मे लौट आने की आशा और जीवन की आशा—इन दो विजातीय बातों का एक ही साथ तजना कहा गया है, दो कर्मों को एक ही क्रिया 'तजैं' से अन्वित किया गया है।

अतिरिक्त उदाहरण

(४) ब्रज-धरा-जन की निशि साथ ही।
विकलता **परिवर्धित हो चली**॥
(५) तिमिर के सँग शोक-समूह भी।
प्रबल था पल-ही-पल हो रहा॥
(६) संका मिथिलेस की सिया के उर-सूल सबै,
तोरि डारे रामचन्द साथ हर-धनु के।
(७) राजाओं का गर्व राम ने **तोड़ दिया** हर-धनु के साथ।

(८) देह और जीवन की आशा साथ-साथ **होती हैं क्षीण**।
शिखा-सूत्र के साथ हाय ! उन **बोली पंजाबी छोड़ी**।
(स्वामी रामतीर्थ के लिए)

---

१६. प्रतिवस्तूपमा

जब उपमेय-वाक्य और उपमान-वाक्य का एक ही साधारण-धर्म कहा जाय पर भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कहा जाय (जब दो वाक्यों में वस्तु-प्रतिवस्तु-भाव हो)।

प्रतिवस्तूपमा में दो वाक्य होते हैं—एक उपमेय-वाक्य और दूसरा उपमान-वाक्य। दोनों वाक्यों का एक ही साधारण-धर्म होता है। यह साधारण-धर्म दोनों वाक्यों में कहा जाता है पर भिन्न-भिन्न शब्दों में अर्थात् उपमेय-वाक्य में जिस शब्द द्वारा कहा जाता है, उपमान-वाक्य में उस शब्द द्वारा नहीं कहा जाता, किन्तु उसी अर्थ वाले किसी दूसरे शब्द द्वारा कहा जाता है।

उदाहरण

(१) मुख **सोहत** मुसकान सों, **लसत** जुन्हैया चन्द।

यह मुख मुसकान से सोहता है—यह उपमेय-वाक्य है और चन्द जुन्हाई चाँदनी) से लसता है—यह उपमान-वाक्य है। दोनों का साधारण-धर्म है 'शोभा देता है'। यह धर्म प्रथम वाक्य में **'सोहत'** शब्द से और द्वितीय वाक्य में **'लसत'** शब्द से कहा गया है।

(२) **सोहत** भानु प्रताप सों, **लसत** सूर धनु-बान।

यहाँ प्रथम वाक्य उपमान-वाक्य है और दूसरा उपमेय-वाक्य।

(३) तिन्हहि **सुहाव न** अवध-बधावा।
चोरहिं चाँदनि रात **न भावा**॥

यहाँ 'न सुहाना' साधारण-धर्म है जो उपमेय-वाक्य 'सुहाव न' शब्द और उपमान-वाक्य में 'न भावा' शब्दों के द्वारा कहा गया है

---

१७. दृष्टान्त

जब पहले एक बात कहकर फिर उससे मिलती-जुलती दूसरी बात पहली बात के उदाहरण के रूप में कही जाय (जब दो वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव हो)।

दृष्टान्त में दो वाक्य होते हैं—एक उपमेय-वाक्य, दूसरा उपमान-वाक्य, पर दोनों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव होता है, अर्थात् दोनो का धर्म एक नही होता, पर एक जैसा अर्थात् मिलता-जुलता होता है।

उदाहरण

(१) सिव औरंगहि **जिति सकै,** और न राजा-राव।
हत्थि-मत्थ पर सिंह बिनु, आन न **घालै घाव** ॥

यहाँ पहले एक बात कही गयी कि शिवाजी ही औरगजेब को जीत सकते है, अन्य राजा-राव नही। फिर उदाहरण के रूप मे एक दूसरी बात कही गयी (जो पहली बात से मिलती-जुलती है) कि हाथी के माथे पर सिह ही घाव कर सकता है, दूसरा कोई घाव नही कर सकता।

(२) धनी-गेह मे श्री **जाती** ह,
कभी न जाती निर्धन घर मे।
सागर मे गगा **गिरती** ह,
कभी न गिरती सूखे सर मे।

(३) सठ **सुधरहिं** सत-सगति पाई।
पारस परसि कु-धातु **सुहाई** ॥ (कुधातु = लोहा)

(४) जपत एक हरिनाम के, पातक कोटि **बिलाहिं**।
लघु चिनगारी एक ते, घास-ढेर **जरि जाहिं** ॥

(५) कन-कन जोरे मन **जुरै, खावत निबरै** सोय।
बूँद-बूँद ते घट **भरै, टपकत रीतो** होय ॥

(६) भरतहिं **होय न राजमद,** विधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि, छीर-सिन्धु **बिलगाइ** ॥

(७) पगो प्रेम नँदलाल के, हमें **न भावत जोग**।
मधुप ! राजपद पाइ कै, **भीख न माँगत लोग** ॥

(८) निरखि रूप नँदलाल को दृगनि रुचै नहिं आनि ।
तजि पियूख कोऊ करत कटु ओषधि को पान ? ।।

नोट—ध्यान रखना चाहिए कि इसमे अर्थान्तरन्यास की भाँति सामान्य बात का विशेष बात द्वारा, या विशेष बात का सामान्य बात द्वारा समर्थन नहीं होता, अर्थात् इसमे एक बात सामान्य और दूसरी विशेष न होकर दोनो बातें विशेष (या कभी-कभी दोनो बातें सामान्य) होती है ।

इसी प्रकार प्रतिवस्तूपमा की भाँति इसमे दोनो बातो का धर्म एक नहीं होता, किन्तु भिन्न-भिन्न होता है, यद्यपि वह मिलता-जुलता होता है ।

---

१८. अर्थान्तरन्यास

जब कोई सामान्य बात कहकर उसके समर्थन मे दूसरी विशेष बात कही जाय, या जब कोई विशेष बात कहकर उसके समर्थन मे दूसरी सामान्य बात कही जाय, जब सामान्य अर्थ का समर्थन विशेष अर्थ से, या विशेष अर्थ का समर्थन सामान्य अर्थ से किया जाय (जब दो वाक्यों मे समर्थ्य-समर्थक-भाव हो) ।

उदाहरण

(क) सामान्य का विशेष से समर्थन—

(१) जाहि मिले सुख होत है, तिहि बिछुरे दुख होइ ।
सूर-उदय फूलै कमल, ता बिनु सकुचै सोइ ।।

पहले एक सामान्य बात कही कि जिस व्यक्ति के मिलने से सुख होता है उसके बिछुड़ने से दुःख होता है । फिर एक विशेष बात कमल और सूर्य की कहकर इस सामान्य कथन का समर्थन किया कि जिस प्रकार सूर्य के आने से कमल को सुख होता है, पर उसके बिछुड़ जाने से कमल संकुचित हो जाता है ।

(२) अति परिचय तें होत है, अवसि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय ।।

यहाँ पहले एक सामान्य बात कही कि अत्यन्त परिचय होने से अनादर का भाव हो जाता है। इसका समर्थन मलयाचल पर्वत की भीलिनी का उदाहरण देकर किया गया कि जिस प्रकार मलयाचल मे रहने वाली भीलनी चन्दन को ईधन के काम में लाती है (मलयाचल मे चन्दन बहुत होता है इसलिए वह ईधन की भाँति जलाया जाता है)।

(ख) विशेष का सामान्य से समर्थन—

(३) दियो अभय अमरन्ह, कियो हर हालाहल पान।
पर-उपकारन हित सहै कष्ट कहा न महान ? ॥

यहाँ पहले शकर सम्बन्धी विशेष बात कही कि शंकर ने समुद्र-मन्थन से निकले हुए हलाहल विष का पान कर लिया और देवताओ को अभयदान दिया (स्वय कष्ट सहन करके भी दूसरो का उपकार किया), फिर इस बात का समर्थन एक सामान्य बात कहकर किया कि महापुरुष परोपकार के लिए कौन कष्ट नही सहते ?

अतिरिक्त उदाहरण

(क)

(१) बड़े सनेह लघुन पर करही।
गिरि निज सिरन सदा तृन धरही ॥

(२) जो रहीम ओछो बढ़ै, तो अति ही इतराइ।
प्यादा तें फरजी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाय ॥

(३) जो जाको गुन जानही, सो तेहि आदर देत।
कोयल अंबहि हेत है, काग निबौरी हेत ॥

(४) संगति सुमति न पावही, परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर मे, हीग न होइ सुगंध ॥

(५) सबै सहायक सबल के, कोई न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय ॥

(६) टेढ़ जानि सका सब काहू।
वक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू ॥

(ख)

(१) रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय-दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देह॥

(२) जेहि अचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन अ-समय के परे, मित्र मत्रु ह्वै जात॥

(३) देखो, फूले देखियत, प्रात कमल के गोत।
दास जु, मित्र-उदोत लखि, सबै प्रफुल्लित होत॥
(गोत = गोत्र, समूह। मित्र = (१) सूर्य, (२) सुहृद् जन। उदोत = उदय, उन्नति)।

(४) कौन बड़ाई उदधि मिलि, गग-नाम भो धीम।
केहि की महिमा नहिं घटी, पर-घर गये रहीम॥

(५) वक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू।
टेढ़ जानि सका सब काहू॥

---

१६. उदाहरण

जब एक बात कहकर उसके उदाहरण के रूप मे एक दूसरी बात कही जाय और दोनों को जैसे, ज्यो, जिमि आदि किसी उपमावाचक शब्द से जोड़ दिया जाय।

यह अलकार अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त और प्रतिवस्तूपमा से समानता रखता है। इन अलंकारो के उदाहरणों मे दोनो कथनों को, बीच मे उपमावाचक शब्द रखकर, जोड़ दिया जाय तो वे उदाहरण अलंकार के उदाहरण हो जायेंगे।

उदाहरण

(क) पहला कथन सामान्य, दूसरा कथन विशेष—

(१) जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान।
ज्यों तपि-तपि मध्याह्न लौ, अस्त होत है भान॥

(२) ऊँचे बैठे ना लहै, गुन बिनु बड़पन कोइ।
बैठो देवल-सिखर **ज्यों**, बायस गरुड़ न होइ॥
(३) सबै सहायक सबल के, कोइ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग **ज्यों**, दीपहि देत बुझाय॥
(४) बुरो बुराई जो तजै, तो चित खरो सकात।
ज्यों निकलंकमयंक लखि, गनै लोग उतपात॥
(५) एक दोष गुन-पुज मे, तौ बिलीन ह्वै जात।
जैसे चन्द-मयूख मे, अंक कलंक बिलात॥

(ख) दोनों विशेष कथन—

(१) जपत एक हरि-नाम के, पातक कोटि बिलाहिं।
ज्यों चिनगारी एक तें, घास-ढेर जरि जाहिं॥
(२) तत्त्व गहत ग्यानी पुरुख, बात बिचारि-बिचारि।
मथनहार तजि छाछ **ज्यों**, माखन लेत निकारि॥
(३) हरित-भूमि तृन-संकुल, समुझि परहि नहि पथ।
जिमि पाखंड-बिबाद तें लुप्त होहि सद्ग्रन्थ॥
(४) अर्क-जवास पात बिनु भयऊ।
जिमि सु-राज खल-उद्यम गयऊ॥
(५) सिमिट सिमिट जल भरहिं तलावा।
जिमि तद्गुन सज्जन पहँ आवा॥

टिप्पणी—संस्कृत के आलंकारिक केवल प्रथम प्रकार को ही उदाहरण अलंकार मानते हैं, अर्थात् उनके अनुसार उदाहरण अलकार तभी होता है जब पइला कथन सामान्य और दूसरा विशेष हो। दोनों कथन एकसे होने पर उनके मत में उदाहरण अलंकार नही होता है। ऐसे उदाहरणो में वे उपमा अलंकार ही मानते हैं।

उदाहरण के वाचक-शब्द—जैसे, ज्यों, जिमि, यथा, जथा, जस आदि 'जो' सर्वनाम से बने हुए उपमावाचक शब्द उदाहरण अलकार के वाचक-शब्द होते हैं।

उदाहरण अलंकार में यह आवश्यक है कि **पहला** वाक्य उपमेय-वाक्य हो

और **दूसरा** उपमान-वाक्य हो, और उपमावाचक शब्द दूसरे वाक्य के साथ आये। उदाहरण अलंकार में उपमावाचक शब्द जैसे, ज्यों, जिमि, जस, यथा आदि ही आते हैं; वैसे, त्यों, तिमि, तस, तथा आदि नही आते।

---

२०. काव्यलिंग

जब कोई कथन किया जाय और उसका समर्थक हेतु भी साथ मे कहा जाय।

इसमें प्रायः दो वाक्य होते है, एक मे कोई बात कही जाती है, दूसरे मे उसके समर्थक हेतु का कथन होता है। पर दो वाक्यों का होना आवश्यक नही। (समर्थक हेतु = पुष्टि करने वाला कारण)

उदाहरण

(१) कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाइ।
वह खाये बौरात जग, यह पाये बौराइ॥

प्रथम चरण में यह बात कही गयी कि सोने में धतूरे की अपेक्षा सौ गुनी अधिक मादकता होती है। दूसरे चरण मे इस कथन का समर्थक हेतु बताया गया है कि आदमी धतूरे के **खाने से** पागल होता है पर सोने को **पाने से ही** पागल हो जाता है।

(२) श्री पुर मे, वन मध्य हौ, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी ! अब तियन की को करिहै परतीति॥

सीता राम की अंगूठी से कहती है—हे मुद्रिका ! अब स्त्रियों का विश्वास कौन करेगा ? अयोध्या मे लक्ष्मी ने राम को छोड़ दिया, वन में मैने उनको छोड़ दिया और मार्ग में तूने राम को छोड़ दिया—इस प्रकार तीन-तीन स्त्रियों ने राम को छोड़ दिया; इन उदाहरणों को देखकर स्त्रियों का विश्वास अब कोई कैसे करेगा ?

यहाँ द्वितीय चरण में एक कथन किया गया है जिसका समर्थक हेतु प्रथम चरण में कहा गया है।

(३) पावक-झर तें मेह-झर दाहक दुसह विसेखि ।
दहै देह वा के परस, याहि दृगन ही देखि ।।

मेघों की ज्वाला अग्नि की ज्वाला से अधिक दुःसह है क्योंकि उसका स्पर्श करके शरीर जलता है पर इसको देखकर ही शरीर जल उठता है ।

टिप्पणी—काव्यलिंग मे क्योंकि (या इसलिए) आदि हेतु के वाचक शब्दों का प्रयोग नही होता, परन्तु अर्थ करते समय उनका प्रयोग करना होता है ।

---

२१. निदर्शना

जब दो कार्यों या दो वस्तुओं को, उसमें समानता सूचित करने के लिए, एक बताया जाय ।

उदाहरण

(क) दो कार्यों में एकत्व की स्थापना—

(१) कविता समुझाइबो मूरख को
सविता गहि भूमि पै डारिबो है ।

यहाँ 'मूर्ख को कविता समझाने' के कार्य को 'सूर्य को लेकर पृथ्वी पर फेंक देना' कहा गया है, अर्थात् दोनों को एक बताया गया है । वस्तुतः दोनों कार्य एक नहीं हैं, मूर्ख को कविता समझा सकना एक बात है और सूर्य को पृथ्वी पर फेंक सकना बिलकुल दूसरी, दोनों कार्य सर्वथा भिन्न हैं । फिर भी दोनों को एक बताया गया है; इसलिए कि दोनों में समानता सूचित करनी है—मूर्ख को कविता समझा सकना **वैसा ही (असम्भव) है जैसा** सूर्य को पृथ्वी पर फेंक सकना ।

(२) यह प्रेम को पंथ कराल महा
तरवार की धार पै धावनो है ।

प्रेम के पंथ पर चलना तलवार की धार पर दौड़ना नहीं है, पर तलवार की धार पर दौड़ने के **समान** (दुष्कर) है।

(३) जँग जीतन जो चहत है सिव सो बैर बढ़ाइ।
जीबे की इच्छा करत कालकूट ते खाइ॥

शिवाजी से बैर करके युद्ध जीतने की इच्छा करना और कालकूट विष खाकर जीने की इच्छा करना दोनों **एक नहीं** किन्तु **एक समान** (असम्भव) है।

(४) राम-चरन-अवलंब बिनु करत मुकति की आस।
चाहत बारिद-बुंद गहि 'तुलसी' उड़न अकास॥

राम के चरणों का आश्रय लिये बिना मोक्ष की आशा करना वैसा ही है **जैसा** बादल की जल-धार को पकड़कर आकाश में उडने की इच्छा करना। दोनों समान रूप मे असम्भव है।

(५) वृथा विगोवत मूढ़ नर-देह अमोलक पाय।
वोहित-काग उड़ात सो फेंकि महामनि हाय!॥

अमूल्य नर-देह को पाकर वृथा खोना वैसा ही है जैसा जहाज पर बैठे कोवे को उड़ाने के लिए अमूल्य मणि को फेंकना (मणि जल में जा गिरेगी और फिर नहीं मिलेगी)।

(ख) दो वस्तुओं में एकत्व की स्थापना—

(६) पायी जाती अमल मुख मे ओप आदित्य की है।

आदित्य की ओप (सूर्य की शोभा) आदित्य मे ही रहती है, मुख मे नही रह सकती। मुख की ओप आदित्य की ओप के समान है, यह सूचित करने के लिए मुख की ओप को ही आदित्य की ओप कह दिया गया है।

(७) हीरा-जोति सो तेहि परिछाई।

हीरे की ज्योति उसके सुन्दर शरीर की छाया है।

हीरे की ज्योति और शरीर की परछाँही दोनों वस्तुएँ बिलकुल भिन्न है, फिर भी हीरे की ज्योति को परछाँही बताया गया है। ऐसा करने का उद्देश्य हीरे की ज्योति और शरीर की परछाँही में समानता सूचित करना है—हीरे की ज्योति सुन्दर शरीर की छाया के समान है।

(८) सुजनों के वचनों में रहता अमृत का मीठापन है।

अमृत का मिठास अमृत में ही रह सकता है, मुख में नहीं पर सुजनों के वचनों का मीठापन अमृत के मीठेपन के समान है, यह सूचित करने के लिए वचनों के मीठेपन और अमृत के मीठेपन को अभिन्न कहा गया है।

(९) पाया है यह चन्द्र ने हरि-मुख का माधुर्य।

चन्द्र में जो माधुर्य है वह उसका अपना है, हरि के मुख का नहीं। हरि के मुख का माधुर्य हरि के मुख में ही रह सकता है, चन्द्रमा मे नही। कहने का भाव यह है कि चन्द्र का माधुर्य हरि-मुख के माधुर्य के समान है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) पाकर **तुम्हें** परन्तु **भरत को** पाया मैंने।

(२) है **दाँतों** की झलक मुझको दीखती **दाड़िमों** मे।

(३) **मीठे वचन उदारता, सोने माँहि सुगन्ध।**

(४) जे असि भगत जानि परहरही।
केवल ग्यान हेतु स्रम करही॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी।
खोजत आक फिरहिं पय लागी॥

(५) सुनि खगेस ! हरि भगति बिहाई।
जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महा-सिन्धु बिनु तरनी।
पैरि पार चाहत जड़-करनी॥

टिप्पणी—निर्देशना मे प्रायः उपमेय या उपमेय-वाक्य के साथ जो, अति शब्द तथा उपमान या उपमान-वाक्य के साथ सो, वह आदि शब्द आते हैं पर इनका आना आवश्यक नही।

२२. अप्रस्तुतप्रशंसा (अन्योक्ति)

जब अप्रस्तुत अर्थ से प्रस्तुत अर्थ निकले।

प्रस्तुत अर्थ उस अर्थ को कहते हैं जो प्रसंग का विषय हो, जो प्रसंग में लगता हो, जिसका वर्णन करना अभीष्ट हो, अर्थात् जिसका कवि वर्णन करना चाहता हो।

अप्रस्तुत अर्थ वह अर्थ होता है जो प्रसंग का विषय नहीं होता, परन्तु जो प्रस्तुत अर्थ के समान होता है।

अप्रस्तुतप्रशंसा में प्रस्तुत या अभीष्ट अर्थ का प्रत्यक्ष कथन नहीं किया जाता; प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का कथन किया जाता है, पर उससे अर्थ प्रस्तुत का ही लिया जाता है।

उदाहरण

(१) माली आवत देखकर कलियन करी पुकारि।
फूले-फूले चुन लिये, काल्हि हमारी बारि॥

यहाँ माली, कलियाँ और फूलों का कथन किया गया है। पर ये अप्रस्तुत हैं, प्रसंग से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। प्रस्तुत अर्थ है काल, युवा-पुरुषों और वृद्ध-जनों का—काल को आता देखकर युवा पुकार उठते हैं कि यह वृद्धों को ले जा रहा है, थोड़े समय में हम भी वृद्ध हो जायेंगे और हमारी बारी भी आ जायगी।

(२) साईं ! घोड़न के अछत गदहन पायो राज।

घोड़ों के होते हुए गदहों को राज मिल गया। यहाँ घोड़ों और गदहों का अर्थ अप्रस्तुत है। कवि जो बात कहना चाहता है वह यह है कि योग्य पुरुषों के होते हुए अयोग्य राज्य कर रहे हैं। अतः योग्य और अयोग्य का अर्थ प्रस्तुत है।

(३) काल कराल परै कितनो, पै मराल न ताकत तुच्छ तलैया।

यहाँ कवि किसी मनस्वी पुरुष का वर्णन करना चाहता है जो विपत्ति के कठिन से कठिन समय में भी क्षुद्रता का आश्रय ग्रहण नहीं करता। पर मनस्वी पुरुष का प्रत्यक्ष वर्णन न करके हंस के वर्णन द्वारा उसका बोध कराया गया है। यहाँ मनस्वी पुरुष का अर्थ प्रस्तुत है और हंस का अर्थ अप्रस्तुत।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) जिन दिन देखे वे कुसुम, गयी सो बीति बहार।
अब अलि ! रही गुलाब मे अपत कँटीली डार॥
(२) धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ॥
(३) बरसै कहा पयोद ! इत मानि मोद मन माँहि।
यह तो ऊसर भूमि है, अंकुर जमिहै नाँहि॥
(४) नाँहीं भूल गुलाब ! तू सुनि मधुकर-गुंजार।
यह बहार दिन चार की, बहुरि कँटीली डार।
(५) केला तबहि न चेतिया, जब ढिग जामी बेरि।
अब के चेते का भया, काँटनि लीन्ही घेरि॥
(६) कछु छाँह नहीं, सुख-सोभ नही,
रहि कीर ! करीर कहा करिहै ?
(७) खारक-दाख खवाइ मरौ किन, ऊँटहिं ऊँटकटारइ भावै।
(८) ऊँची जात पपीहरा, नीचो पियै न नीर।
(९) रहिमन, अब वे वृच्छ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर ?

---

२३. समासोक्ति

जब प्रस्तुत अर्थ से अप्रस्तुत अर्थ भी निकले।

समासोक्ति में प्रयुक्त शब्दों से प्रस्तुत अर्थ के साथ-साथ एक अप्रस्तुत अर्थ भी सूचित होता है, जो यद्यपि प्रसंग का विषय नहीं होता फिर भी ध्यान को आकर्षित करता है।

(१) कुमुदिनि हू प्रफुलित भयी साँझ कलानिधि जोइ।

यहाँ प्रस्तुत अर्थ है—संध्या के समय चंद्र को देखकर कुमुदिनी खिल उठी। इससे यह अप्रस्तुत अर्थ भी निकलता है—संध्या के समय कलाओं के निधि प्रियतम को देखकर नायिका प्रसन्न हुई।

(२) सहृदय जन के जो कंठ का हार होता।
मुदित मधुकरी का जीवनाधार होता॥
वह कुसुम रंगीला धूल में जा पड़ा है।
नियति ! नियम तेरा भी बड़ा ही कड़ा है॥

यहाँ फूल का अर्थ प्रस्तुत है जिससे किसी युवा-जन की अकाल-मृत्यु का अप्रस्तुत अर्थ भी निकलता है।

(३) वन-वन उपवन
छाया उन्मन-उन्मन गुंजन।
नव वय के अलियों का गुंजन॥

यहाँ भौंरों का अर्थ प्रस्तुत है, जिससे नवयुवक कवियों का अप्रस्तुत अर्थ भी सूचित होता है।

(४) मिलहु सखी ! हम तहँवाँ जाही।
जहाँ जाइ पुनि आउब नाही॥
सात समुद्र पार वह देसा।
कित रे मिलन, कित आव सँदेसा॥

यहाँ पद्मावती के ससुराल जाने का अर्थ है, जिससे मानव के परलोक जाने का अप्रस्तुत अर्थ भी सूचित होता है।

(५) सो दिल्ली अस निबहुर देसू।
कोई न बहुरा, कहइ संदेसू॥
जो गवनै, सो तहाँ कर होई।
जो आवै, किछु जान न सोई॥

यहाँ दिल्ली का अर्थ प्रस्तुत अर्थ है, जिससे परलोक का अप्रस्तुत अर्थ भी निकलता है।

---

२४. अतिशयोक्ति

जब कोई बात लोक-सीमा को उल्लंघन करके, अर्थात् बहुत बढ़ा कर कही जाय, तब अतिशयोक्ति अलंकार होता है। इसके सात प्रकार कहे गये हैं :

(१) सम्बन्धातिशयोक्ति

जब दो वस्तुओं में सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया जाय।

(१) फबि[1] फहरहिं अति उच्च निसाना[2]।
जिन महँ अटकहिं बिबुध[3]-बिमाना॥

यहाँ झंडे और विमानों में अटकने का सम्बन्ध न होने पर भी दोनों में अटकने का सम्बन्ध बताया गया है (कि झंडे विमानों में अटकते हैं)।

(२) पँखुरी लगे गुलाब की परिहै गात खरोट।

यहाँ पंखुरी और गात में खरोंच लगने का सम्बन्ध न होने पर भी (गुलाब की पंखुरी से खरोंच नहीं लगती) यह सम्बन्ध बताया गया है।

(२) असम्बन्धातिशयोक्ति

जब सम्बन्ध होने पर भी सम्बन्ध न बताया जाय।

(१) जेहि वर वाजि[4] राम असवारा।
तेहि सारदा न बरनै पारा[5]॥

शारदा और घोड़े में वर्णन कर सकने का सम्बन्ध है, शारदा वर्णन कर सकती है, फिर भी इस सम्बन्ध का अभाव बताया गया है।

(२) अति सुन्दर लखि सिय! मुख तेरो।
आदर हम न करहिं ससि केरो[6]॥

चन्द्रमा में मुख की समानता करने की योग्यता है पर उसको अस्वीकार किया गया है।

(३) चपलातिशयोक्ति

जब कारण के होते ही तुरन्त कार्य हो जाय।

---

१. शोभित। २. झंडे। ३. देवता। ४. घोड़ा। ५. वर्णन कर सकती। ६. का।

(१) तब सिव तीसर नैन उघारा।
चितवत[1] काम भयउ जरि छारा॥

शिव-नयन का खुलना—कारण। जलना—कार्य। कारण के होते ही तुरन्त कार्य हो गया।

(२) छूटत ही खर सरन के छूटि गये अरि-प्रान।

(४) अक्रमातिशयोक्ति

जब कारण और कार्य एक साथ हों।

बाणन के साथ छटे प्राण दनुजन[2] के।

पहले बाण छूटेंगे, वे शरीर में लगेंगे तब प्राण छूटेंगे, पर यहाँ दोनों का साथ-साथ छूटना कहा गया है।

बाणों का छूटना कारण है जिससे प्राण छूटना कार्य होता है। पहले कारण होगा और फिर कार्य, पर यहाँ दोनों का एक साथ होना कहा गया है।

(५) अत्यन्तातिशयोक्ति

जब कारण के पहले कार्य हो जाय।

(१) हनूमान के पूँछ में, लगन न पायी आग।
लंका सिगरी जर गयी, गये निशाचर भाग॥

आग लगना—कारण। जलना—कार्य। कारण के पहले ही कार्य हो गया।

(२) छूटि न पाये बान धनुख तें, छूटि गये अरि-प्रान।

(६) भेदकातिशयोक्ति

जब और ही, निराला, न्यारा आदि शब्दों से किसी की अत्यन्त प्रशंसा की जाय।

(१) वह चितवन औरै कछू, जेहि बस होत सुजान।

यहाँ 'और ही है' इन शब्दों से चितवन की प्रशंसा की गयी है।

(२) न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की।

यहाँ शिवाजी की नीति-रीति की प्रशंसा 'न्यारी' कहकर की गयी है।

---

१. देखते ही। २. दैत्यों के।

(७) रूपकातिशयोक्ति

जब उपमेय का लोप करके केवल उपमान का कथन किया जाय और उसी से उपमेय का अर्थ लिया जाय।

(१) कनक-लता पर चन्द्रमा, धरे धनुष दो बान।

यह नायिका का वर्णन है—कनक-लता = सोने के से रंग का शरीर। चन्द्रमा = मुख। धनुष = भ्रकुटी। बाण = नेत्र, कटाक्ष।

यहाँ शरीर, मुख, भ्रकुटी, कटाक्ष इन उपमेयों का लोप करके केवल लता, चन्द्र, धनुष, बाण इन उपमानों का कथन किया गया है। परन्तु प्रसंग से नायिका का अर्थ ज्ञात हो जाता है।

(२) गुरुदेव ! देखो तो नया यह सिंह सोते से जगा।

यहाँ उपमेय अभिमन्यु का उल्लेख नहीं किया है, उपमान सिंह का ही उल्लेख है, पर उससे अर्थ अभिमन्यु का ही निकलता है।

अतिरिक्त उदाहरण

सम्बन्धातिशयोक्ति—

(१) नित गढ़ बाँचि चलै ससि-सूरू।
नाँहिं त होइ बाजि-रथ चूरू॥
(बाँचि = बचा कर)

(२) सहस किरन जौ सुरुज दिपाई।
देखि लिलार सोउ छपि जाई॥

(३) नागमती-दुख बिरह अपारा।
धरती-सरग जरै जेहि झारा॥

(४) जो संपदा नीच-गृह सोहा।
सो बिलोकि सुर-नायक मोहा॥

(५) गऊ-सिंध रेंगहिं इक बाटा।
दूनौं पानि पियहिं एक घाटा॥

(६) बैठि कै धाम पै चातक हैं
घन तें वन चोंच चलाइ कै पीवत। (वन = पानी)

(७) जेहि पंखी के नियर होइ, कहइ बिरह कै बात।
सोइ पंखी जाइ जरि, तरवर होइ निपात॥

असम्बन्धातिशयोक्ति—

(१) जो भा सुख सिय-मातु मन देखि राम-बर-बेस ।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा-सेस ।।

(२) श्री रघुनाथ के हाथन सामुहै कल्पलता-सनमान करै को ?

(३) औधपुरी-महिमा को चितै अमरावति को हम क्यों सनमानैं ?

(४) बिधि-हरि-हर-कवि-कोविद-बानी ।
कहत साधु-महिमा सकुचानी ।।

(५) वीकपुरी की अमरपुरी भी कर न सकेगी समता ।

चपलातिशयोक्ति—

(१) 'आयो, आयो' सुनत ही सिव सरजा ! तुम नाँव ।
बैरि-नारि दृग-जलन सो बूड़ि जात अरि-गाँव ।।

(२) कैकेयी के कहत ही राम-गमन की बात ।
नृप दसरथ के ताहि छन सूखि गये सब गात ।।

अक्रमातिशयोक्ति—

वह शर इधर गाण्डीव-गुण से भिन्न जैसे ही हुआ ।
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ ।।

भेदकातिकयोक्ति—

(१) औरै हँसनि बिलोकिबो, औरै बचन उदार ।

(२) औरै रस, औरै रीति, औरै राग, औरै रंग,
औरै तन, औरै मन, औरै बन ह्वै गये ।

(३) जानत जान, अजान न जानत, 'सागर' बात सनेह की न्यारी ।

रूपकातिशयोक्ति—

(१) खिली चाँदनी बिखर गये **चाँदी के मोती** अंबर में । (तारे)

(२) झरने उछल-उछल कर **मोती** उछालते है ।
(मोती = जल-कण)

(३) सुघर कृषक-वधुएँ खेतों मे **सोना** नित है उपजाती ।
(सोना = अन्न)

(४) लद गयी मोतियों से हरियाली ।
(मोती = ओसबिन्दु)

(५) कनकलतानि इन्दु, इन्दु माँहि अरविंद,
झरै अरविंदन तें बुन्द मकरन्द के।

(लता = स्त्रियाँ। इन्दु = मुखमण्डल। अरविंद = नेत्र। मकरन्द-बिन्दु = आँसू)

टिप्पणी—सम्बन्धातिशयोक्ति प्रायः सभी अलंकारों में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहती है।

अत्युक्ति

जब रोचकता लाने के लिए शूरता, उदारता, सुन्दरता, विरह, प्रेम आदि का अद्भुततापूर्ण या अत्यन्त मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन किया जाय।

यह अलंकार वस्तुतः अतिशयोक्ति ही है।

उदाहरण

(१) लखन-सकोप वचन जब बोले।
डगमगानि महि दिग्गज डोले॥

लक्ष्मण के क्रोधित होकर बोलने से पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओं के हाथी काँप गये। पृथ्वी का डगमगाना और दिग्गजों का काँपना मिथ्या बात है। अतः मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन होने से अत्युक्ति अलंकार हुआ। यहाँ शूरता का मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन है।

(२) जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन[1] दाटियतु है।
प्रलै के-से धाराधर[2] धमक नगारा, धूरि-
धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है।
'भूखन' भनत, भुव-गोल कोल[3] हहरत,
कहरत दिग्गज, मगज फाटियतु है।
कीच-से कचरि जात सेस के असेस फन,
कमठ[4] की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है।

---

१. दुर्जन, शत्रु,। २. बादल। ३. पृथ्वी को धारण करने वाला वाराह। ४. पृथ्वी को धारण करने वाला कच्छप।

यहाँ अवधूतसिंह की धाक का मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन अतिशय प्रशंसा के लिए किया गया है।

(३) जाचक तेरे दान तें भये कल्पतरु भूप !

राजा से याचकों ने इतना दान पाया कि वे कल्पवृक्ष बन गये (कल्पवृक्ष = सब लोगों की सब इच्छाएँ पूर्ण करने वाला पेड़)। यहाँ राजा के दान का मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन है।

(४) गिनति न कछु पारस पदुम चिंतामनि के ताहि।
निदरत मेरु-कुबेरु को तव जाचक जग माँहि॥

किसी राजा से कहा गया है कि तुम्हारे याचक पारस, चिंतामणि, मेरु, कुबेर आदि को भी अपने सामने कुछ नहीं गिनते, अर्थात् तुमने उनको इतना दान दिया है कि वे उनसे भी बढ़ गये।

यहाँ राजा की उदारता का मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

(५) वाके तन की छाँह ढिग जोन्ह[1] छाँह-सी होत।

किसी स्त्री का वर्णन किया गया है। वह इतनी सुन्दर है कि चाँदनी उसकी छाया की छाया जान पड़ती है। उसकी छाया भी चाँदनी से बढ़कर उज्ज्वल है, फिर उसका तो कहना ही क्या ! यहाँ सुन्दरता का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है।

(६) परसि वियोगिनी को पौन[2] गयो मानसर,
लागत ही औरै गति भयी मानसर की।
जलचर जरे, औ सेवार जरि छार भये,
जल जरि गयो, पक सूख्यो, भूमि दरकी॥

किसी विरहिणी स्त्री के विरह-ताप का वर्णन है। उसका विरह-ताप इतना तीव्र था कि पवन उसे छूकर जब मानसरोवर पहुँचा तो ताप के कारण उनके जलचर जल गये, सेवार जलकर राख बन गया, जल उड़ गया, कीचड़ सूख गया और तले की भूमि फट गयी।

यहाँ विरह-ताप का मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन है।

---

१. ज्योत्स्ना, चाँदनी। २. पवन।

(७) नीर खीर छानै दरबारा ।
दूध-पानि सब करै निनारा ॥
गऊ-सिंघ रेंगहि इक बाटा ॥
दूनौं पानि पियहिं एक घाटा ॥

यहाँ शेरशाह के न्याय का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है ।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) जासु त्रास डर कहँ डर होई ।

(२) भूखन-भार सम्हारिहै क्यों यह तनु सुकुमार ।
सूधे पाँय न परत महि सोभा ही के भार ॥

(३) साहि के सपूत सिवराज ! तेरी धाक सुनि,
गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत है ।
बीजापुर, गोलकुडा, आगरा, दिल्ली के कोट
बाजे-बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ।

(४) बादसाह हठि कीन्ह पयाना । इन्द्र-भँडार डोल, भय माना ॥
गगन छपान, खेह तस छायी । सूरज छपा, रैनि होइ आयी ॥
दिन के पखि चरत उड़ि भागे । निसि के निसरि चरै सब लागे ॥
कमल सँकेता, कुमुदिनि फूली । चकवा बिछुरा, चकई भूली ॥

---

२५. स्वभावोक्ति

जब किसी वस्तु के स्वभाव का याथातथ्यपूर्ण वर्णन किया जाय । (याथा-तथ्यपूर्ण = जैसा हो ठीक वैसा ही, बिना कुछ बढ़ाये, सर्वथा स्वाभाविक)

उदाहरण

(१) भोजन करत चपल-चित, इत-उत अवसर पाइ ।
भाजि चले किलकात मुख, दधि-ओदन लपटाय ॥

यहाँ राम आदि बालकों के बाल-स्वभाव का सर्वथा स्वाभाविक वर्णन है ।

(२) हरि अपने आगे कछु गावत।
तनक-तनक चरनन सों नाचत, मनही-मनहि रिझावत ॥
बाँह उँचाइ काजरी-धौरी गइयन टेरि बुलावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में लवनी लिये खवावत ॥

यहाँ बालक कृष्ण के स्वभाव का याथातथ्यपूर्ण वर्णन है।

(३) रघु-कुल-रीति सदा चलि आयी।
प्रान जाइ बरु बचन न जायी ॥

यहाँ रघुकुल के स्वभाव का याथातथ्यपूर्ण वर्णन है।

(४) कहौं सुझाव, न कुलहिं प्रसंसी।
कालहुँ डरहिं न रन रघुबंसी ॥

यहाँ भी रघुबंशियों के स्वभाव का स्वाभाविक वर्णन है।

(५) जौ सत संकर करै सहाई।
तदपि हतौं रन, राम-दुहाई ॥

यहाँ लक्ष्मण के स्वभाव का याथातथ्यपूर्ण वर्णन है।

---

२६. विरोधाभास

जब वस्तुतः विरोध न होते हुए भी विरोध दीख पड़े।
जब साथ न रहने वाली वस्तुओं को एक साथ रख दिया जाय।

उदाहरण

(१) **मीठी लगै** अँखियान **लुनाई**।

आँखों का लावण्य मीठा लगता है। लुनाई या लावण्य का अर्थ है नमक का खारापन। खारापन मीठा लगता है, यह विरोध है। पर वस्तुतः विरोध नहीं क्योंकि लुनाई या लावण्य का अर्थ यहाँ नमक का खारापन नही है किन्तु सौन्दर्य है।

(२) **सुधि आये सुधि जाय।**

सुधि आने में सुधि चली जाती है। यहाँ विरोध दिखायी पड़ता है। पर वस्तुतः विरोध नहीं है क्योंकि वास्तविक अर्थ है सुधि (याद) आने से सुधि (सुध-बुध, चेतना, होश) चली जाती है।

(३) तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस-राग, रति-रंग ।
अन-बूड़े बूड़े, तरे जे **बूड़े** सब अंग ॥

वाद्य संगीत, गेय-संगीत, कविता और प्रेम के रंग में जो नहीं डूबे वे डूब गये और जो पूरी तरह डूब गये वे नही डूबे—इन कथनों में विरोध दिखायी पड़ता है । पर वस्तुतः विरोध नहीं है क्योंकि वास्तविक अर्थ यह है कि जिन्होंने गहराई में पैठकर इनका आनन्द लिया उनका जीवन सफल हो गया और जिन्होंने गहराई में पैठकर इनका आनन्द नहीं लिया उनका जीवन विफल हो गया ।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) **अचल** हो उठते हैं **चंचल** ।
चपल बन जाते हैं **अविचल** ॥
पिघल पड़ते है **पाहन-दल** ।
कुलिश भी हो जाता **कोमल** ॥

(२) सर **स-जीवन जीवन-शून्य** है ।
जीवन = (१) पानी, (२) सजीवता ।

(३) मैं **अन्धा** भी **देख रहा** हूँ, रोती हो तुम रोती ।
देख रहा हूँ = अनुभव कर रहा हूँ ।

(४) मैं निज **रोदन** में **राग** लिये फिरता हूँ ।
शीतल वाणी में **आग** लिये फिरता हूँ ॥

(५) 'जीवन ! जीवन !' की पुकार है,
खेल रहा है **शीतल दाह** ।

(६) वह **जीता ही मरा**, देश का प्रेम न जिसमें अरे ! भरा ।

(७) **ना** वह **मिला, न बेहरा**, ऐस रहा भरपूर । (वह = ईश्वर)

(८) कवि बियास, रस कैवला पूरी ।
दूरि सो **नियर, नियर** सो **दूरी** ।

(९) धनि **सूखे भरे** भादों माँहा । अबहुँ न आये सींचन नाहा ॥

(१०) **बहिरो सुनै, मूक** पुनि **बोलै, रंक** चलै **सिर छत्र धराई** ॥

---

२७. असंगति

जब साथ रहने वाली वस्तुओं को अलग-अलग स्थानों में कर दिया जाय।

प्रथम असंगति

जब साथ रहने वाले कारण और कार्य को अलग-अलग स्थानों में कहा जाय, अर्थात् जब कारण एक स्थान में हो और कार्य दूसरे स्थान में।

उदाहरण

(१) सीतहि लै दसकंध गयो,
पै गयो है बिचारो समुन्दर बाँध्यो।

'यहाँ समुद्र बाँधा गया' यह कार्य हुआ। यह क्यों हुआ? क्योंकि सीता हरी गयीं। पर सीता का हरण किया था रावण ने। अतः रावण बाँधा जाना चाहिए था। पर बाँधा गया समुद्र जिसका सीता के हरण से कोई सम्बन्ध न था। कारण हुआ रावण में, पर कार्य हुआ समुद्र में।

(२) सूरत जराइ कियो दाह पातसाह-उर,
स्याही सब जाइ पातसाही-मुख झलकी।

शिवाजी ने सूरत को जलाया। सूरत के जलने से जलन सूरत को ही होनी चाहिए थी, परन्तु हुई बादशाह के हृदय में। सूरत के जलने से सूरत ही काली होनी चाहिए थी, परन्तु काली हुई बादशाहत (अर्थात् बादशाहत को कलंक लगा)। इस प्रकार जलना रूप कारण सूरत में है, पर जलन होना और काला होना रूपी कार्य बादशाह और बादशाहत में बताये गये हैं।

(३) हृदय घाव मेरे, पीर रघुबीरै।

कारण (घाव) लक्ष्मण के हृदय में है और कार्य (पीड़ा) राम में।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) विष पीते हैं मेघ, विरहिणी-प्राण निकलते।
(२) बान लखन के उर लग्यो, पीर राम-हिय माँझ॥

द्वितीय असंगति

जब कहीं करने का कार्य कहीं किया जाय।

उदाहरण

(१) परिहि कंठ बिच किंकणी, कस्यो कमर बिच हार ।

(२) पाँयन की सुध भूलि गयी अकुलाइ महावर आँखिन दीनो ।

कमर में पहनने की करधनी कंठ मे पहन ली, कंठ मे पहनने का हार कमर में पहन लिया और पाँवों मे लगाने का महावर आँखों मे (अंजन की जगह) लगा लिया । करधनी कमर के साथ रहती है पर उसे वहाँ से अलग करके कंठ के साथ रख दिया ।

तृतीय असंगति

जब उद्देश्य के बाधक कार्य को किया जाय ।

उदाहरण

(१) आये **जीवन** देन धन, लागे **जीवन** लेन ।

उद्देश्य था जीवन देना, पर कार्य करते है जीवन लेने का ।

(२) **मोह मिटावन** अवतरे, **माहि लयीं** ब्रज-नारि ।

कृष्ण ने संसार का मोह मिटाने के लिए अवतार लिया था, पर उलटे गोपियों को मोहित कर लिया (उन्हें मोह में डाल दिया) ।

---

२८. विशेषोक्ति

जब कारण के होने पर भी कार्य न हो ।

उदाहरण

(१) नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ।

प्यास बुझना कार्य का कारण **नीर** है (नीर से प्यास बुझती है) । यहाँ कारण विद्यमान है, फिर भी प्यास बुझना रूपी कार्य नही होता ।

(२) दौलत इन्द्र समान बढ़ी,
पै खुमान को नेक गुमान न आयो ।

गुमान आना कार्य का कारण दौलत का बढ़ना होता है । यहाँ **दौलत बढ़ना** रूपी कारण होने पर भी **गुमान आना** रूपी कार्य नहीं हुआ ।

(३) फूलै-फलै न बेंत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।

पौधों के फलने-फूलने का कारण वर्षा होती है। यहाँ कहा गया है कि अमृत की वर्षा होने पर भी बेंत का पौधा फलता-फूलता नहीं। **वर्षा** रूपी कारण विद्यमान होने पर **फूलना-फलना** रूपी कार्य नहीं होता।

(४) धनपति उहै जेहिक मंसारू।
सबहिं देइ नित, घट न भंडारू॥

सदा सबको देना रूपी कारण होने पर भी **भंडार का घटना** रूपी कार्य नहीं होता।

---

२६. विभावना

जब कारण के न होने पर भी कार्य हो जाय।

उदाहरण

(१) मुनि तापस जिन तें दुख लहहीं।
ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥

जलना कार्य के लिए अग्नि-रूपी कारण होना चाहिए। यहाँ अग्नि-रूपी कारण के न होने पर भी जलना-रूपी कार्य हो गया है।

(२) बिन घनस्याम धाम-धाम ब्रज-मंडल में,
ऊधो! नित बसति बहार बरसा की है।

वर्षा कार्य के लिए बादल कारण विद्यमान होना चाहिए। यहाँ कहा गया है कि श्याम घन के न होने पर भी वर्षा की बहार रहती है।

घनश्याम = (१) पानी-भरा बादल; (२) कृष्ण। वर्षा = (१) जल-वर्षा, (२) अश्रु-वर्षा।

(३) केसव, वाकी दसा सुनि हौं अब
आग बिना अँग-अंगनि **डाढ़ी**।

(४) **प्यास मिटी पानी बिना**, मोहन को मुख देखि।

टिप्पणी—अपूर्ण कारण से कार्य हो, रुकावट होने पर भी कार्य हो जाय,

विपरीत कारण से कार्य हो और कार्य से कारण हो तब भी विभावना अलंकार होता है। जैसे—

(१) **जब अपूर्ण कारण से कार्य हो—**

तो सो को सिवाजी ! जेहि दो सौ आदमी सों जीत्यो
जंग सरदार सौ हजार असवार को।

शिवाजी ने दो सौ सिपाहियों से लाख सिपाहियों के सरदार को जीत लिया। जीतना कार्य का कारण सेना है, पर दो सौ सिपाहियों की सेना लाख सेना को जीत सके, इसके लिए पर्याप्त नहीं होती, परन्तु फिर भी उसने जीत लिया। इस प्रकार अधूरे या अपर्याप्त कारण से कार्य हुआ।

(२) **जब कार्य की रुकावट उपस्थित होने पर भी कार्य हो जाय—**

तेज[1] छत्रधारीन[2] हू असहन ताप करन्त।

ताप करना—कार्य। तेज—कारण।

छत्ता होने से ताप करना कार्य नहीं हो सकता। छत्ता ताप-रूपी कार्य होने के मार्ग में रुकावट है, पर यहाँ छत्ता-रूपी रुकावट होने पर भी कार्य हो जाता है।

(३) **जब विपरीत कारण से कार्य हो—**

(१) कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं।

घन से अंगारे नही, पानी बरसता है, जो अंगारों का विरोधी है। पर यहाँ कहा गया है कि घन अंगारे बरसाते हैं।

(२) सिय-हिय सीतल भो लगे जरक लंक की झार।

यहाँ आग की लपट रूपी विपरीत कारण से शीतलता रूपी कार्य होना कहा गया है।

(४) **जब कार्य से कारण उत्पन्न हो—**

(३) कर-कल्पद्रुम सों करचो जस-समुद्र उत्पन्न।

हाथ दान देने में कल्पवृक्ष के समान हैं, उनसे यश का समुद्र उत्पन्न हुआ। समुद्र कल्पवृक्ष का कारण है, न कि कल्पवृक्ष समुद्र का। पर यहाँ कल्पवृक्ष को समुद्र का कारण कहा गया है।

---

१. प्रताप। २. छत्रधारी = (१) छत्ते वाले, (२) राजा।

३०. व्याजस्तुति

जब निंदा के बहाने स्तुति या स्तुति के बहाने निंदा की जाय।

उदाहरण

(क) व्याजस्तुति (निंदा के बहाने स्तुति)

(१) तुलसी, जनि पग धरहु गंग महँ साँच।
निगानांग करि नितहि नचाइहि नाच॥

गंगा मे पैर मत रखो नही तो वह बिलकुल नंगा करके सदा नाच नचायेगी। 'नंगा करके सदा नाच नचायेगी' इन शब्दों द्वारा गंगा की निंदा की गयी दीख पड़ती है, पर वास्तव में स्तुति की गयी है क्योंकि इन शब्दों का भाव यह है कि वह तुम्हें महादेव बना देगी (महादेव बिलकुल नंगे रहते हैं और सदा नाचते हैं)।

(२) कु-जन-पाल, गुन-वर्जित, अ-कुल अ-नाथ।
कहहु कृपानिधि ! राउर कस गुन-गाथ॥

यहाँ कु-जन-पाल (दुष्टों का पालक), गुन-वर्जित (गुणों से हीन), अ-कुल (कुलहीन, हीन कुल का), अ-नाथ (शरणहीन) आदि शब्दों से राम की निंदा की गयी दीख पड़ती है, पर वास्तव में स्तुति है—कु-जन-पाल = पृथ्वी के निवासियों के पालक; गुन-वर्जित = माया के तीनों गुणों से परे; अ-कुल = जिसका कोई कुल नहीं है; अ-नाथ = जिसका कोई स्वामी नही है, जो स्वाधीन है।

(३) मन-क्रम-वचनों से अर्चना जो तुम्हारी,
निशि-दिन करते हैं, श्याम ! तू हा उन्ही की।
जनम-जनम की है देह को छीन लेता।
अयि नटवर ! तेरे ढंग ये हैं न अच्छे।

यहाँ देखने में कृष्ण की निंदा है कि वे प्राणियों की जन्म-जन्मान्तरों की कमाई (अनेक जन्मों में कमाई हुई देह) को छीन लेते है, पर वास्तव में स्तुति है कि वे अपने आराधकों को पुनर्जन्म से मुक्त कर देते हैं; उनको फिर जन्म नहीं धारण करना पड़ता।

(४) जमुना ! तू अविवेकिनी, क्या तेरा यह ढंग ?
पाप-जनों से बन्धु का मान कराती भंग ॥

पाप = पापी । बन्धु = यमराज ।

यमुना में स्नान करके पापी यमराज का निरादर करके स्वर्ग में चले जाते हैं ।

(ख) व्याजनिंदा (स्तुति के बहाने निंदा)

(१) सेमर ! तू बड़भाग है, कहा सराह्यो जाइ ?
पंछी करि फल-आस तोहि, निसदिन सेवत आइ ।

यहाँ देखने में सेमर की स्तुति है पर वास्तव में निंदा है कि वह आशा लगाकर रात-दिन सेवा करने वाले पक्षियों को निराश करता है ।

(२) नाक-कान बिनु भगिनि तिहारी ।
छमा कीन्ह तुम धरम बिचारी ॥
लाजवंत तुम सहज सुभाऊ ।
निज गुन निज मुख कहसि न काऊ ॥

यहाँ देखने में रावण की प्रशंसा है, पर वास्तव में निंदा है ।

(३) है घूमता-फिरता समय, तुम किन्तु ज्यों-के-त्यों खड़े ।
फिर भी अभी तक जी रहे हो, वीर हो निश्चय बड़े ! ॥

(४) धन्य कृपन ! तो-सो यहाँ पर-उपकारी है न ।
पर हित धन संचय करै सब सुख तजि दिन-रैन ॥

---

३१. उल्लेख

जब एक वस्तु का अनेक प्रकार से (एक व्यक्ति के अनेक दृष्टिकोणों से, या अनेक व्यक्तियों के अनेक दृष्टिकोणों से) उल्लेख अर्थात् वर्णन किया जाय ।

उदाहरण

(१) गुनि-जन हित तू कल्प-तरु, दुर्जन-हित तू काल।
प्रजा हेतु सुर-नाथ तू, हे जसवंत भुवाल ! ॥

वहाँ राजा का अनेक दृष्टिकोणों से वर्णन किया है।

(२) गुनि-जन कल्पद्रुम कहै, दुर्जन कहैं सु काल।
प्रजा कहै सुरनाथ तू, हे जसवंत भुवाल ! ॥

यहाँ राजा का अनेक व्यक्तियों के अनेक दृष्टिकोणों से वर्णन किया गया है।

(३) याचक कल्पद्रुम कहैं, कहैं स्कंद वर वीर।
कहैं रुद्र दुर्जन तुम्है, हे कुमार मति-धीर ॥

यहाँ किसी राजकुमार का अनेक व्यक्तियों के अनेक दृष्टिकोणों मे वर्णन किया गया है।

(४) कोउ कह नर-नारायन, हरि-हर कोउ।
कोउ कह, बिहरत बन मधु-मनसिज दोउ ॥

यहाँ वन में विचरण करते हुए राम-लक्ष्मण का विभिन्न व्यक्तियों के विभिन्न दृष्टिकोणों से वर्णन हुआ है।

(५) राजकुँवर तेहि अवसर आये।
मनहुँ मनोहरता तन छाये ॥
जिन्ह कै रही भावना जैसी।
प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी ॥
देखहिं भूप महा रन-धीरा।
मनहुँ वीर रस धरे सरीरा ॥
रहे असुर छल-छोनिप-भेखा।
तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
विदुसन प्रभु विराट-मय दीसा।
बहु भुज-पग-कर-लोचन-सीसा ॥
हरि-भगतन देखे दोऊ भ्राता।
इष्टदेव सम सब-सुख-दाता ॥

सहित विदेह विलोकहि रानी ।
सिसु मम, प्रीति न जाइ बखानी ।।

यहाँ राम-लक्ष्मण का अनेक व्यक्तियों के अनेक दृष्टिकोणों से उल्लेख किया गया है ।

(६) यह मेरी गोदी की शोभा, घनी घटा की उजियाली ।
दीप-शिखा है अन्धकार की, है पतझड़ की हरियाली ।।

यहाँ किसी माता ने अपनी बालिका का अनेक प्रकार से वर्णन किया है ।

(७) नील व्योम के सुन्दर दीपक ! शीतलता के भव्य भवन !
उस निर्जन वन में अनन्त के नीरवता के खिले सुमन !
आकुलता के सौम्य कलेवर ! मथित-क्षीरसागर-नवनीत !
निशा-सुन्दरी के भावुक पति ! मेरे मानस के संगीत !

यहाँ कवि ने चन्द्रमा का अनेक प्रकार से वर्णन किया है ।

टिप्पणी—कई विद्वान उल्लेख अलंकार के दो भेद करते हैं :

(१) प्रथम उल्लेख—जब एक वस्तु का **एक** व्यक्ति (कवि आदि) के अनेक दृष्टिकोणों से उल्लेख किया जाय (ऊपर उदाहरण १, ६ और ७) ।

(२) द्वितीय उल्लेख—जब एक वस्तु का **अनेक** व्यक्तियों के अनेक दृष्टिकोणों से वर्णन किया जाय (ऊपर उदाहरण २ से ५) ।

---

३२. परिकर

जब साभिप्राय विशेषण का प्रयोग किया जाय । (साभिप्राय = प्रसंग में विशेष रूप से सार्थक)

उदाहरण

(१) सोच **हिमालय के अधिवासी** ! यह लज्जा की बात हाय !
अपने ताप-तपे तापों से तू न तनिक भी शान्ति पाय !

यहाँ शान्ति न पाना क्रिया के प्रसंग में '**हिमालय के अधिवासी**' यह विशे-

शण साभिप्राय है। जो शीतल हिमालय का अधिवासी है वही अपने ही तापों से संतप्त रहे तो वस्तुतः लज्जा की बात है।

(२) **भाल में जा के सुधाकर** है, वह साहब **ताप** हमारो **हरैंगो**
अंग है जाको विभूति-भरो, वह भौन में **संपति** भूरि **भरैंगो**
जारक है जो मनोभव को, जग-पातक वाही के जारे **जरैंगो**
दासजू **सीस पै गंग लिये रहै,** ताकी कृपा कहो को न **तरैंगो** ?

ताप हरना क्रिया के प्रसग मे 'भाल में जाके **सुधाकर** है' यह विशेषण साभिप्राय है। इसी प्रकार **संपति भरना** क्रिया के प्रसग में 'अंग है जाको **विभूति-भरो,**' **जलाना** क्रिया के प्रसंग मे '**जारक** है जो मनोभव को' तथा **तारना** क्रिया के प्रसग में '**सीस पै गंग लिये रहै**' आदि शिव के विशेषण साभिप्राय है।

(३) **जानो न** नेक विथा पर की, बलिहारी, तऊ पै **सुजान** कहावत।

यहाँ **न जानना** क्रिया के प्रसग में **सुजान** विशेषण साभिप्राय है।

(४) तुलसिदास **भव-व्याल-ग्रसित** तव सरन **उरग-रिपु-गामी** !

भव-रूपी व्याल (साँप) से छुड़ाने के प्रसंग मे भगवान के लिए **उरग-रिपु-गामी** (= गरुड़ की सवारी वाले) यह विशेषण साभिप्राय है।

---

३३. परिकरांकुर

जब साभिप्राय विशेष्य या नाम का प्रयोग किया जाय।

उदाहरण

(१) तब तक **हर** के प्रखर शरों ने त्रिपुरासुर के प्राण हरे।

यहाँ हरण करने का प्रसंग है, अतः शिव के लिए **हर** (हरने वाला) नाम साभिप्राय है।

(२) मेरे प्रखर शरों के आगे भाग चलोगे तुम **रणछोड़** !

यहाँ युद्ध से भागने का प्रसंग है, अतः कृष्ण के लिए **रणछोड़** (युद्ध को छोड़ने वाला) नाम साभिप्राय है।

(३) **रतन** चला, घर भा अँधियारा।

यहाँ घर को अँधेरा करने का प्रसंग है अतः राजा रतनसेन के लिए रतन (रत्न) नाम साभिप्राय है (रतन के हटने से अँधेरा हो जाता है)।

(४) सुनहु विनय मस विटप **असोका** !
सत्य नाम करु, हरु मम सोका ॥

यहाँ शोक दूर करने का प्रसंग है, अतः अशोक वृक्ष के लिए अशोक (शोक से रहित) नाम साभिप्राय है।

(५) सौ रँग है शिवराज बली,
जिन **नौरँग** में रँग एक न राख्यो।

यहाँ रंग न रखने का प्रसंग है, अतः औरंगजेब के लिए नौरंग (नौ रंगों वाला) नाम का प्रयोग साभिप्राय है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) रतनसेन जो बाँधा, मसि **गोरा** के गात।
(२) **वामदेव** सन काम वाम होइ बरतेउ। (वामदेव = शिव)
(३) हे **हरि** ! कस न हरहु भ्रम भारी ?
(४) रस बरसत **घनश्याम** जहँ, हरत सकल संताप।
(५) **धरनि-सुता** धीरज धरेउ समय सुधर्म बिचारि।

---

३४. तद्गुण

जब एक वस्तु के दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर उसके गुण को ग्रहण कर ले।

उदाहरण

(१) केस मुकुत सखि ! मरकत-मन-मय होत।

कुशों में गूँथे हुए मोती मरकत-मणि (नीलम) बन जाते हैं।

सफेद मोती काले केशों के सम्पर्क में आकर केशो के कालेपन को ग्रहण करके काले बन जाते हैं (और नीलम के समान जान पड़ते है)।

(२) सेत-कमल कर लेत ही अरुन-कमल-छबि देत ।

सफेद कमल रक्त-वर्ण हथेली के सम्पर्क में आने पर हथेली की लालिमा को ग्रहण करके लाल हो जाता है (और लाल कमल-सा दिखायी पड़ता है) ।

(३) धूमहू तजै सहज करुवाई । अगर-प्रसंग सुगंध बसाई।

धूम अगर के सम्पर्क से अपने स्वाभाविक कड़वेपन को छोड़कर सुगंधित बन जाता है (अगर के सुगंध गुण को ग्रहण कर लेता है) ।

(४) नाम का मोती अधर की संग पा ।
बन गया मूँगा मनोरम, देख लो ।

टिप्पणी—तद्‌गुण अलंकार कभी-कभी भ्रांतिमान अलकार के साथ आता है–

ले कर में मोती करत तू मूँगा को मोल

कोई स्त्री किसी दुकान पर जाकर मोतियों का हाथ में लेती है। सफेद मोती लाल हथेली के सम्पर्क में आकर उसकी लालिमा को ग्रहण कर लाल बन जाते हैं और मूँगों-से दिखायी पड़ते है। नायिका को भ्रांति हो जाती है और वह मोतियों को मूँगे समझ कर कहती है—ये मूँगे किस भाव दिये ?

अतिरिक्त उदाहरण

(१) हार बेल पहिरावौ चंपक होत ।

(२) अधर धरत हरि के परत ओठ-दीठ-पट-जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुस-रंग होति ।।

---

३५. अतद्‌गुण

जब कोई वस्तु दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आकर भी उसके गुण को ग्रहण न करे ।

उदाहरण

(१) जमुना-जलहु नहाइ के हंस न कारो होय ।

उज्जवल हंस यमुना के काले जल के सम्पर्क में आकर भी उस जल की कालिमा को ग्रहण नहीं करता ।

(२) राखो मेल कपूर में, हीग न होत सुगंध ।

सुसंधित कपूर के सम्पर्क में आने पर भी हीग उसके सुगंधि के गुण को ग्रहण नहीं करती ।

---

३६. पूर्वरूप

जब कोई वस्तु दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर उसके गुण को ग्रहण कर ले, पर पीछे किसी कारण से उसको छोड़कर अपने गुण को पुनः ग्रहण कर ले ।

उदाहरण

केस-मुकुत सखि ! मरकत-मनि-मय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥

सफेर मोती काले केशों के सम्पर्क में आकर उनके कालेपन को ग्रहण कर लेते हैं पर पीछे हाथ में लिये जाने पर पुनः सफेद हो जाते हैं ।

---

३७. मीलित

जब कोई वस्तु समान रंगवाली दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर उसमे इस प्रकार मिल जाय कि अलग दिखायी न पड़े ।

उदाहरण

(१) यह उज्ज्वल प्रासाद चाँदनी में मिल एकाकार ।

सफेद प्रासाद (=महल) सफेद चाँदनी के सम्पर्क के आकर उसमे मिलकर एकाकार हो गया, अलग से दिखायी नही पड़ता ।

(२) जान्यो परत न सखि ! लग्यो तन केसर को लेप।

सुनहरे रंग का केशर का लेप समान रंगवाले नायिका के शरीर के सम्पर्क में आकर उसी में विलीन हो गया।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) मिलिगे तेरे सु-जस में हंस, चमेली-फूल।

(२) पँवुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाय।

(३) सुबरन के भूखन सखी ! तन-सुबरन मिलि जाहिं।

(४) जोन्ह-सी जोन्ह गयी मिलि यो,
मिलि जात ज्यों दूध मे दूध की धार है।

(५) अरुन-बरन तिय-चरन पर जावक लख्यो न जाइ।

---

३८. उन्मीलित

जब कोई वस्तु समान रंगवाली दूसरी वस्तु के सम्पर्क मे आने पर उसमे मिलकर विलीन हो जाय, पर पीछे किसी कारण-वश, अलग दिखायी पड़ने लगे।

उदाहरण

(१) जान्यो परत सुगन्ध तें तन केसर को लेप।

केशर का लेप समान रंगवाले शरीर मे लगने पर अदृश्य हो गया, पर केशर की सुगन्धि के कारण उसकी प्रतीति होने लगी (प्रतीत होने लगा कि लेप लगा है)।

(२) सिवा ! तिहारे सु-जस में मिले धवल छबि-मूल।
बोल-बास तें जानियत हंस, चमेली-फूल॥

श्वेत-वर्ण हंस और चमेली के फूल श्वेत-वर्ण यश के सम्पर्क में आकर उसमें विलीन हो गये, पर बोल के कारण हंसों का और सु-वास के कारण चमेली-फूलों का अस्तित्व लक्षित होने लगा।

(३) चंपक-हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय-हियरे जब कुम्हिलाइ॥

चम्पे का हार समान रंग वाले सीता के शरीर के सम्पर्क में आकर उसमें विलीन हो जाता है, पर पीछे कुम्हला जाने पर अलग लक्षित होने लगता है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) जान्यो परत सु-बास ही, केसर लागी अंग।

(२) गले की सोनजुही की माल
कौन आली ! पाता पहचान ?
अगर उन्मद् मधुपों का झुड
न झुक आता करने मधु पान।

---

३९. सामान्यक

जब दो समान रूप-रंगवाली वस्तुएँ सम्पर्क में आने पर अलग-अलग पहचानी न जा सकें।

उदाहरण

(१) भरत-राम एकै अनुहारी।
सहसा लखि न सकै नर-नारी॥

भरत और राम दोनों का रूप-रंग एकसा है जिससे वे अलग-अलग पहचाने नहीं जाते।

(२) एक-रूप तुम भ्राता दोऊ।
तेहि भ्रम तें मारेउँ नहिं ओऊ॥

बाली और सुग्रीव का रूप-रंग समान होने के कारण राम उनको अलग-अलग पहचान नहीं पाये।

---

४०. विशेषक

जब कोई वस्तु समान रूप-रंगवाली दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर पहले पहचानी न जा सके पर पीछे, किसी कारण से, पहचान ली जाय।

उदाहरण

कागन में मृदु बोल तें पिक को लियो पिछानि।

काग और कोयल में समान रूप-रंग के कारण भेद नही दिखायी पड़ता था पर पीछे मधुर बोली के कारण कोयल को पहचान लिया गया।

---

४१. परिसंख्या

जब किसी बात का कथन दूसरी बात या बातो का वर्जन (निषेध) करने के लिए किया जाय।

परिसंख्या मीमांसाशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। उसका अर्थ है वर्जन (exclusion)।

उदाहरण

(१) नृपति राम के राज में संकर के कर सूल।

यहाँ राजा राम के राज्य में शंकर के हाथ में सूल (=त्रिशूल) है यह कथन किया गया है। इस कथन का उद्देश्य अन्यत्र (अन्य स्थानों में) शूल की स्थिति को वर्जित करना है। कवि के कहने का आशय यह है कि राम के राज्य में शंकर के हाथ को छोड़कर अन्यत्र कही शूल (=दुःख) नही है। शूल शब्द यहाँ श्लिष्ट है।

(२) होम-धूम मलिनाई जहाँ।
अति चंचल चलदल है वहाँ॥

राम के राज्य में होम के धूम में मलिनता है; कहने का आशय यह है कि और कही मलिनता (=मलिन आचरण) नही है। इसी प्रकार वहाँ अत्यन्त

चंचल पीपल है। कहने का भाव यह है कि वहाँ की प्रजा में कोई चंचल स्वभाव वाला नहीं है।

(३) सेव्य कहा ? सुरसरि को तीर।

प्रश्न किया गया कि सेवन करने योग्य क्या है ? उत्तर दिया गया कि गंगा का तट। कहने का भाव यह है कि गंगा का तट ही सेव्य है, दूसरी कोई वस्तु सेव्य नही है।

(४) तिथि ही को छय होत है रामचन्द्र के राज।

तिथि का ही क्षय होता है, यह कथन करने का वास्तविक अभिप्राय यह बताने का है कि प्रजा में किसी व्यक्ति या किसी गुण का क्षय नही होता।

टिप्पणी

कभी-कभी जिस वस्तु का वर्जन करना होता है उसका उल्लेख भी कर दिया जाता है। नीचे दिये गये उदाहरण इसी प्रकार के है :

(५) चाहना है कीर्ति की, **न शरीर की**।

(६) विधवा बनी, **न नारि**।

यहाँ बनी (=अरण्यानी, रोही, वन) विधवा है (धव के पेड़ से रहित है), कोई स्त्री विधवा (पति से रहित) नही है। यहाँ स्त्री के विधवा होने का वर्जन किया गया है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) मूलन ही की **अधोगति** जहँ केसव गाइय।
होम-हुतासन-धूम नगर एकै **मलिनाइय**॥
दुर्गति दुर्गन ही जु, **कुटिल गति** सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाख प्रगट कवि-कुल के जी में॥

(२) **दंड** जतिन-कर, **भेद** जहँ नर्तक-नृत्य समाज।
जीतो मनसिज सुनिय अस रामचन्द्र के राज॥

(३) केसन ही में **कुटिलता,** संचारिन में **संक**।
लखो राम के राज्य में इक समि मांहि **कलंक**॥

(४) मुनि-गन-मुख महं **साम** है, **भेद** नृत्य अरु गान।
जल भरिबे में **दाम** औ **दंड** जतिन-कर जान।

(५) पत्रा ही **तिथि पाइये** वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पूनो ही रहत आनन-ओप उजास ॥

---

४२. यथासंख्य

जब जिस क्रम से कुछ वस्तुओं का उल्लेख किया जाय उसी क्रम से उनसे सम्बन्धित वस्तुओं का उल्लेख भी किया जाय।

उदाहरण

(१) कहा नृपति,[१] पारस[२] कहा, कहा चंदन,[३] कहा भृंग[४] ?
रंक,[१], लोह,[२] तरु[३], कीट[४] जो परसि न पलटें अंग ॥

यहाँ नृपति, पारस, चंदन और भृंग का उल्लेख जिस क्रम से हुआ है उसी क्रम से उनसे सम्बन्धित रंक, लोह, तरु और कीट का उल्लेख हुआ है।

वह राजा क्या जिसके पास आकर रक का रूप न बदल जाय (वह धनी न हो जाय), वह पारस क्या जिसको छूकर लोहे का रूप न बदल जाय (वह सोना न हो जाय); वह चंदन क्या जिसके निकट रहने वाले तरु का रूप न बदल जाय (वह भी चंदन न हो जाय); और इसी प्रकार वह भृंग क्या जिसके संसर्ग से कीट का रूप न बदल जाय (वह भी भृंग न हो जाय)।

(२) निसर्ग[१] ने, सौरभ[२] ने, पराग[३] ने।
प्रदान की थी अति कान्त-भाव से ॥
वसुंधरा[१] को, पिक[२] को, मिलिंद[३] को।
मनोज्ञता[१], मादकता[२], मदान्धता[३] ॥

यहाँ प्रथम चरण मे दान करने वाली तीन वस्तुओं का उल्लेख जिस क्रम से हुआ है, उसी क्रम से तृतीय चरण में दान पाने वाली तीन वस्तुओं का और चतुर्थ चरण में दान दी गयी तीन वस्तुओं का उल्लेख हुआ है—

निसर्ग ने वसुंधरा को मनोज्ञता दी
सौरभ ने विक को मादकता दी,
पराग ने मिलिन्द को मदान्धता दी।

(३) बोल[१]-बास[२] तें जानियत हंस[१]-चमेलीफूल[१]।

यहाँ हंस और चमेली का फूल इन दो वस्तुओं का उल्लेख जिस क्रम से किया गया है, उसी क्रम से उनसे सम्बन्धित गुणों (बोली और सुगंधि) का उल्लेख किया गया है। हंस बोली से जाना जाता है और चमेली का फूल सुगंधि से।

(४) गिरे अरिन के देखि तव रूप-रोस विकरार।
तन[१] तें मन[२] तें करन[३] तें, स्वेद[१] गरब[२] हथियार[३]॥

यहाँ स्वेद, गर्व और हथियार का जिस क्रम से उल्लेख है, उसी क्रम से तन, मन और कर का उल्लेख है—तन तें स्वेद, मन तें गरब, करन तें हथियार गिरे।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) अमिय[१], हलाहल[२], मद[३] भरे, सेत[१], स्याम[२], रतनार[३]।
जियत[१], मरत[२], झुकि-झुकि परत[३], जेहि चितवत इक बार॥

(२) पूजहु[१] पालु[२] जय करहु[३] गुरुजन[१] मित्र[२] अमित्र[३]।

(३) भौं[१] चितवनि[२] डोर[३] बरुनि[४]
अमि[१] कटार[२] फँद[३] तीर[४]
कटत[१] फटत[२] बँधत[३] बिंधत[४]
जिय[१] हिय[२] तन[३] मन[४] बीर॥

(४) विजयी शस्त्र उठा रुस्तम ने
गदा[१] पास[२], औ खड्ग[३] कटार[४]।
तोड़े,[१] बाँधे,[२] फाड़े,[३] काटे[४]
पग[१], भुज,[२] सिर,[३] उर[४] अरिन अपार॥

४३. मुद्रा

जब वाक्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय, जो प्रसंग का अर्थ देने के साथ ही, परस्पर सम्बन्धित कई-एक वस्तुओं के नामों को भी सूचित करें।

उदाहरण

(१) सूखि **छुहारा** तन भयो, **गिरी** परैं सब देह।
किस मिस लिखूँ संदेसरा, **नोज** लग्यो यह नेह॥

इस पद्य में मोटे टाइप में छपे शब्द प्रसंग का अर्थ देने के साथ ही चार मेवों के नामों को सूचित करते हैं।

(२) **ना रंगी** हौं पीव सों, यह **अनार**-पन मोहि।

मोटे अक्षरों में छपे शब्द प्रसंग का अर्थ देने के साथ ही दो फलों के नामों को भी सूचित करते हैं।

(३) **पी पर**-देसे गवन करि **बर**बट गये रिसाइ।
परा सखी ! मो रोवना, **साल** हृदय नहिं जाइ॥

मोटे शब्द प्रसंग का अर्थ देने के अतिरिक्त, चार पेड़ों के नामों को भी सूचित करते हैं।

(४) **मोती-तागे गूंथती शालिनी** है।

यहाँ मोटे शब्दों और वर्णों से शालिनी छंद और उसके गणों (मगण, तगण, तगण, गुरु-गुरु ऽऽऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽऽ) के नाम सूचित होते है।

(५) **स्वप्न** किसका देखकर स-विलास
कर रही है **कवि-कला कल हास** ?
और **प्रतिमा** भेंट किसकी **भास**
भर रही है वह करुण निःश्वास ? (**साकेत**)

इस पद्य में मोटे शब्दों से महाकवि भास और उनके दो नाटकों (स्वप्न-वासवदत्ता और प्रतिमा) के नाम भी सूचित होते हैं। भास को 'कविता का हास' कहा गया है, उनका यह विशेषण भी इस पद्य में सूचित हुआ है।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) **बराबरी** कैसे करौं, **पूरी** परती नाहिं।

बराबरी = १. समानता; २. बड़ा, बड़ी (खाद्य पदार्थ)। पूरी = १. पूरी (पूर्ण); २. पूड़ी।

(२) **की करपा करतार, जा मन फल सा आ मिला।**
सेव कदम कच-नार, पी पल रत्ती तू न तज॥

की इ० = १. की कृपा करतार ने, जो मन में फल था वह आ मिला (प्राप्त हुआ), सेवा कर (प्रिय के) पैरों की हे सुन्दर बालों वाली नारी !, प्रिय को पल भर रत्ती भर तू मत छोड़। २. कीकर, पाकड़, ताड़, जामुन, फालसा, आँवला, सेव, कदंब, कचनार, पीपल, रत्ती, तज—ये पेड़ों के नाम है।

(३) **वणि आणी,** रहसी नहीं, रहसी **सू थारी।**
सो नारी जासी परी, (कह) भावज **कूँभा री॥**

वणि आणी = १. बन आयी है; २. बनियानी। सू थारी = १. वह तेरी; २. सुथारिन। सो नारी = १. वह नारी, सीता; २. सुनारिन। कूँभारी = १. कुम्भकर्ण की भावज, मंदोदरी; २. कुम्हारिन।

कुम्भकर्ण की भावज अर्थात् मन्दादरी रावण से कहती है—तुम्हारी भावी आ गयी है, अब तुम्हारे पास रहेगी नही, केवल वही रहेगी जो तुम्हारी है; वह नारी सीता, जिसे तुम हर कर लाये हो, चली जायगी।

(४) **द्रोण**-श्याम रण-**भीष्म युधिष्ठिर**
अर्जुन-सखा **विराट** सदा।
शकुनी-पति के **कर्णधार** जो
हरें हमारी हरि विपदा॥

(५) नजर **बदली** जो देखी उस सनम की।
न दी नालों ने फुर्सत एक दम की॥

(ग) पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अलंकार

भारत की भाँति पश्चिम (=यूरोप) में भी साहित्यशास्त्र का अच्छा विकास हुआ। उसमें अनेक अलंकारों का विवेचन हुआ। इन अलंकारों में कई-एक भारतीय साहित्यशास्त्र मे और पश्चिमी साहित्यशास्त्र में समान है और कई-एक असमान। समान अलंकारों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं :

Simile—उपमा, metaphor—रूपक, hyperbole—अतिशयोक्ति, climax—सार, proverb—लोकोक्ति, paradox—विरोधाभास, alliteration—अनुप्रास, pun—श्लेष अथवा यमक।

असमान अलंकारों में से कई-एक लक्षणा और व्यंजना मे अन्तर्भूत हो जाते हैं, जैसे metonymy और synechdoche.

आगे कुछ अलंकारों का वर्णन किया जाता है :

१. मानवीकरण
(Personification)

जब अ-मानव में मानव के गुणों का आरोप किया जाय।
(अमानव=अव्यक्त, abstract अथवा निर्जीव पदार्थ एवं पशु-पक्षी।)

उदाहरण

(१) चुपचाप खड़ी थी वृक्ष-पांत।
सुनती जैसे कुछ निजी बात॥
(२) ऊषा उदास आती है।
मुख पीला ले जाती है॥
(३) मृत्यु ने अपने शीतल हाथ।
रखे उस पर आकर तत्काल॥

टिप्पणी—मानवीकरण से मिलता-जुलता Apostrophe अलंकार होता है। उसमें अमानव पदार्थ को मानव मानकर (अव्यक्त या निर्जीव वस्तु को सजीव मानकर) सम्बोधन किया जाता है।

उदाहरण

(१) आशा ! तेरी अमित महिमा, धन्य तू देवि आशा !
तू छू के है मृतक बनते प्राणियों को जिलाती ।
(२) मृत्यु अरी चिरनिद्रे ! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल ।

२. विशेषण-विपर्यय
(Transferred Epithet)

जब किसी वस्तु के विशेषण को किसी दूसरी वस्तु के साथ प्रयुक्त किया जाय ।

उदाहरण

(१) धीरे-धीरे पथिक जा रहा
श्रान्त मार्ग पर अपने ।

मार्ग श्रान्त नही किन्तु पथिक श्रान्त है । पथिक का 'श्रान्त' विशेषण मार्ग के साथ प्रयुक्त किया गया है ।

(२) विरही की बीतेगी कैसे
तिमिराच्छन्न विकल रजनी ?

रजनी विकल नहीं, विकल विरही है । विरही का 'विकल' विशेषण रजनी से युक्त कर दिया गया है ।

(३) जननी का वत्सल अंचल
है शिशु का आश्रय कोमल ।

अंचल वत्सल (वात्सल्यपूर्ण) नहीं, जननी वत्सल है । जननी का 'वत्सल' विशेषण अंचल के साथ प्रयुक्त हुआ है ।

३. ध्वन्यर्थ-व्यंजना
(Onomatopoeia)

जब ऐसे शब्दों या वर्णों का प्रयोग किया जाय जो अपनी ध्वनि से वर्ण्य-मान (जिसका वर्णन किया जा रहा हो) वस्तु या प्रसंग की ध्वनि का चित्र खड़ा कर दें। (ध्वन्यर्थ-व्यंजना = शब्द या शब्दों की ध्वनि द्वारा प्रसंग-गत ध्वनि की व्यंजना) ।

उदाहरण

(१) मोती की लड़ियों-से सुन्दर
झरते हैं झाग-भरे निर्झर ।

यहाँ प्रयुक्त शब्दो की ध्वनि ऐसी है जो झरनों के झरने की ध्वनि की व्यंजना करती है ।

(२) तड़तड़ पड़ती धार वारि की उन पर चंचल ।

यहाँ जलधारा के गिरने की ध्वनि की व्यंजना हो रही है ।

(३) घुमड़-घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन

(४) चरमर-चरमर चूँचरर-मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी ।

(८) अर्थालंकारों का पारस्परिक अन्तर

१. पूर्णोपमा और लुप्तोपमा

(क) दोनों में एक वस्तु को दूसरी वस्तु के समान बताया जाता है।

(ख) पूर्णोपमा में उपमेय, उपमान, वाचक-शब्द और साधारण-धर्म चारों शब्दों में कहे हुए होते हैं; लुप्तोपमा में उपमेय, उपमान, वाचक-शब्द और साधारण-धर्म इनमें से कोई एक या दो या तीन छिपे रहते हैं, अर्थात् शब्दों में कहे हुए नहीं होते।

पूर्णोपमा—(१) मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है।
(२) मुख मयंक सम मंजु मनोहर।

लुप्तोपमा—(१) मुख चन्द्रमा के समान है। (सुन्दर)
(२) मुख चन्द्र-सुन्दर है। (के समान)
(३) चन्द्र-मुख। (के समान सुन्दर)

२. उपमा, अनन्वय और प्रतीप

उपमा में उपमेय को उपमान के समान बताया जाता है।
प्रतीप में उपमान को उपमेय के समान बताया जाता है।
अनन्वय में उपमेय को उपमेय के ही समान बताया जाता है।

उपमा—मुख मयंक सम मंजु मनोहर।
प्रतीप—सखि ! मयंक सिय-मुख सम सुन्दर।
अनन्वय—हरि-मुख मंजुल हरि-मुख जैसो।

३. उपमेयोपमा और अनन्वय

उपमेयोपमा में उपमेय को उपमान के समान और उपमान को उपमेय के समान बताया जाता है। अनन्वय में (उपमेय का उपमान न होने के कारण) उपमेय को उपमेय के ही समान बताया जाता है।

उपमेयोपमा—मुख मयंक-सम मधुर है, मुख सम मधुर मयंक।
अनन्वय—हरि-मुख सुन्दर हरि-मुख जैसो।

४. रूपक और उत्प्रेक्षा

रूपक में उपमेय को उपमान का रूप दिया जाता है, अर्थात् उपमेय को उपमान बना दिया जाता है।

उत्प्रेक्षा मे उपमेय में उपमान की कल्पना या सम्भावना की जाती है, अर्थात् उपमेय को उपमान मान लिया जाता है।

रूपक—मुख चन्द्रमा है।

उत्प्रेक्षा—मुख मानो चन्द्रमा है।

५. रूपक और रूपकातिशयोक्ति

रूपक में उपमेय और उपमान दोनों का शब्दों द्वारा कथन होता है।

रूपकातिशयोक्ति में केवल उपमान का शब्द द्वारा कथन होता है।

रूपक—ब्रज-नभ मे मुख-चन्द्र शोभायमान है।

रूपकातिशयोक्ति—नभ मे चन्द्र शोभायमान है।

(=ब्रज में मुख शोभायमान है)

६. उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति (रूपकातिशयोक्ति)

उत्प्रेक्षा में उपमेय का अध्यवसान (या निगरण अर्थात् लोप) साध्य अवस्था में होता है (अर्थात् निगरण पूर्ण नही होता है)।

(रूपक-) अतिशयोक्ति में उपमेय का अध्यवसान या निगरण सिद्ध अवस्था में होता है (अर्थात् पूर्ण रूप में हो जाता है)।

उत्प्रेक्षा—मुख मानो चन्द्र है।

रूपकातिशयोक्ति—देखो, ब्रज-भूमि में चन्द्र शोभायमान है।

७. हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा

हेतूत्प्रेक्षा में अ-हेतु को हेतु माना जाता है।

फलोत्प्रेक्षा में अ-फल को फल माना जाता है।

हेतु कार्य से पहले होता है, फल कार्य के पश्चात होता है।

हेतूत्प्रेक्षा—मुख से लज्जित होकर चन्द्रमा पश्चिम-सागर में जा डूबा।

फलोत्प्रेक्षा—लज्जा छिपाने के लिए चन्द्रमा पश्चिम-सागर में जा डूबा।

८. प्रतीप और व्यतिरेक

प्रतीप में उपमेय के सामने उपमान का तिरस्कार किया जाता है।

व्यतिरेक में उपमेय में उपमान की अपेक्षा कोई बात अधिक बतायी जाती है।

व्यतिरेक प्रतीप के साथ प्रायः आता है। उस अवस्था मे वह तिरस्कार का कारण सूचित करता है।

प्रतीप—का सरवरि मुख देउँ मयकू।

व्यतिरेक—चन्द्र कलंकी, मुख निकलंकू।

९. भ्रांति और सन्देह

सन्देह में अनिश्चय रहता है, भ्रांति में झूठा निश्चय।

सन्देह में निश्चय नहीं होता कि कौनसी वस्तु है। भ्रांति में निश्चय हो जाता है पर वह झूठा होता है, सच्चा नहीं।

संदेह—(मुख को देखकर कोई कहता है) यह मुख है या चन्द्रमा।

भ्रांति—(मुख को देखकर कोई कहता है) यह चन्द्रमा है।

१०. भ्रांति और अपह्नुति

भ्रांति में वक्ता भ्रांति के कारण असत्य की स्थापना करता है।

अपह्नुति में वक्ता जान-बूझकर सत्य का निषेध और असत्य की स्थापना करता है।

११. अपह्नुति और रूपक

अपह्नुति में निषेध और आरोप दोनों होते हैं।

रूपक में केवल आरोप होता है।

अपह्नुति—यह (=**मुख**) मुख नही है, चन्द्रमा है।

रूपक—यह (=**मुख**) चन्द्रमा है।

१२. शब्द-श्लेष और अर्थ-श्लेष

शब्द-श्लेष में चमत्कार वाले शब्द को पर्याय-शब्द से बदल देने पर चमत्कार नष्ट हो जाता है।

अर्थ-श्लेष में चमत्कार वाले शब्द को पर्याय-शब्द मे बदल देने पर भी चमत्कार बना रहता है।

शब्द-श्लेष—जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोइ।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होइ॥

अर्थ-श्लेष—(१) नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतो **नीचो** ह्वै चलै, तेतो **ऊँचो** होय॥

(२) **सरस, सुरभि, कोमल, विमल** हरि-मुख अरु अरविंद।

१३. श्लेष और समासोक्ति

(क) समासोक्ति में एक अर्थ प्रस्तुत (=प्रसंग का), और दूसरा अप्रस्तुत (=प्रसंग का नहीं) होता है। श्लेष में दोनों अर्थ प्रस्तुत या दोनों अप्रस्तुत होते हैं (जब दोनों अर्थ अप्रस्तुत होते है तब एक तीसरा प्रस्तुत अर्थ भी होता है जिसका श्लेष से कोई सम्बन्ध नहीं होता)।

(ख) समासोक्ति में केवल विशेषणों का दुहरा अर्थ होता है। श्लेष में विशेष्य का भी दुहरा अर्थ होता है।

(ग) समासोक्ति में प्रस्तुत अर्थ वाच्य और अप्रस्तुत अर्थ व्यंग्य होता है। श्लेष में दोनों अर्थ वाच्य होते है।

१४. प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त

प्रतिवस्तूपमा में दो कथन होते है—एक प्रस्तुत, दूसरा अप्रस्तुत। दोनों का साधारण-धर्म **एक** होता है, जो दोनों कथनों में **भिन्न-भिन्न शब्दों से कहा** जाता है। प्रतिवस्तूपमा में दोनों के धर्मों में वस्तु-प्रति-वस्तु-भाव होता है।

दृष्टान्त में भी दो कथन होते हैं—एक प्रस्तुत, दूसरा अप्रस्तुत। दोनों का साधारण-धर्म **एक नहीं** होता किन्तु **एक-जैसा** अर्थात् **मिलता-जुलता** होता है। दृष्टान्त में दोनों धर्मों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है।

प्रतिवस्तूपमा—जपत एक हरि नाम के पातक कोटि **जराहिं**।
लघु चिनगारी एक तें घास-ढेरि **बरि जाहिं**॥

दृष्टान्त—जपत एक हरि-नाम के पातक कोटि **नसाहिं**।
लघु चिनगारी एक तें घास-ढेर **बरि जाहिं**॥

१५. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास में दो कथन होते हैं, उनमें सामान्य और विशेष का सम्बन्ध होता है, अर्थात् एक सामान्य और दूसरा विशेष होता है।

दृष्टान्त में भी दो कथन होते हैं पर उनमें सामान्य और विशेष का सम्बन्ध नहीं होता, दोनों एक-से होते हैं; या तो दोनों सामान्य या दोनों विशेष (प्रायः दोनों कथन विशेष ही होते हैं)।

अर्थान्तरन्यास—वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू।
टेढ़ जानि संका सब काहू॥

दृष्टान्त—वक्र चन्द्रमहि राहु न ग्रसई।
बंक तरुहि काटै नहिं बढ़ई॥

१६. अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग

दोनों में किसी कथन का समर्थन होता है।

अर्थान्तरन्यास में दोनों कथनों में सामान्य और विशेष का सम्बन्ध होता है। काव्यलिंग में दोनों कथनों में सामान्य और विशेष का सम्बन्ध नहीं होता।

अर्थान्तरन्यास—वक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू॥
टेढ़ जानि संका सब काहू॥

काव्यलिंग—कनक-कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराइ॥

१७. दृष्टान्त और निदर्शना

दृष्टान्त में दो कथन होते हैं जो मिलते-जुलते होते है; ये दोनों कथन दो सर्वथा स्वतन्त्र वाक्य में होते हैं।

निदर्शना में भी दो कथन होते है जो मिलते-जुलते होते है; पर ये दो स्वतन्त्र वाक्यों में नहीं होते। प्रायः 'जो' और 'सो' सर्वनामों के द्वारा एक ही वाक्य में मिला दिये जाते हैं। निदर्शना में दूसरा कथन प्रायः असंभाव्य को लिये हुए होता है।

दृष्टान्त—शिव औरंगहि जिति सकै, और न राजा-राव।
हत्थि-मत्थ पर सिंह बिनु आन न घालै घाव॥

निदर्शना—(१) जंग जीतन जे चहत है तो सों बैर बढ़ाइ।
जीवे की इच्छा करत कालकूट ते खाइ॥

(२) साहन सों रन माँडिबो, कीबो सुकवि निहाल ।
सिव-सरजा को ख्याल है औरन को जंजाल ॥

१८. समासोक्ति और अप्रस्तुत-प्रशंसा

समासोक्ति में प्रस्तुत के कथन से अप्रस्तुत का अर्थ भी निकलता है।

अप्रस्तुत-प्रशंसा में अप्रस्तुत के कथन से प्रस्तुत का अर्थ निकलता है।

समासोक्ति—कुमुदिनि हू प्रफुलित भयी साँझ कलानिधि जोइ ।
(जब कुमुदिनी का वर्णन प्रसंग का विषय हो।)

अप्रस्तुत-प्रशंसा—कुमुदिनि हू प्रफुलित भयी साँझ कलानिधि जोइ ।
(जब नायिका का वर्णन प्रसंग का विषय हो।)

१९. दीपक और तुल्ययोगिता

दीपक में प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक ही धर्म कहा जाता है।

तुल्ययोगिता में या तो अनेक प्रस्तुतों का या अनेक अप्रस्तुतों का एक ही धर्म कहा जाता है।

२०. दीपक और प्रतिवस्तूपमा

(क) दीपक और प्रतिवस्तूपमा दोनों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक ही धर्म होता है।

(ख) दीपक में धर्म एक ही बार कहा जाता है, प्रस्तुत के साथ या अप्रस्तुत के साथ। प्रतिवस्तूपमा में धर्म प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों के साथ कहा जाता है, पर भिन्न शब्दों में।

दीपक—**सोहत** भानु प्रताप सों, धनुष-बान सों सूर।

प्रतिवस्तूपमा—**सोहत** भानु प्रताप सो, **लसत** सूर धनु-बान।

२१. स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति

स्वभावोक्ति में याथातथ्यपूर्ण (जैसा है ठीक वैसा ही, स्वाभाविक) वर्णन किया जाता है।

अतिशयोक्ति में अतिरंजनापूर्ण (बहुत बढ़ा-चढ़ाकर) वर्णन किया जाता है। अत्युक्ति में अद्भुततापूर्ण, अत्यन्त मिथ्यात्वपूर्ण वर्णन होता है।

२२. सहोक्ति और अक्रमातिशयोक्ति

(क) दोनों में दो बातें साथ-साथ होती हैं। दोनों के साथ 'साथ' या उसका कोई पर्यायवाची शब्द आता है।

(ख) अक्रमातिशयोक्ति में जिन बातों का साथ-साथ होना कहा जाता है, उनमें परस्पर कारण और कार्य का सम्बन्ध होता है।

(ग) सहोक्ति में दोनों बातों में कारण और कार्य का सम्बन्ध नही होता।

अक्रमातिशयोक्ति—बानन के साथ छूटे प्रान दनुजन के।

सहोक्ति—हर-धनु साथ टूट्यो गरब नृपन को।

२३. विरोधाभास, असंगति, विभावना और विशेषोक्ति

(क) सब में विरोध का आभास रहता है। असंगति, विभावना और विशेषोक्ति विरोधाभास के ही विशेष प्रकार हैं।

(ख) साथ न रहने वाली वस्तुओं का साथ रहना विरोधाभास है। साथ रहने वाली वस्तुओं का साथ न रहना असंगति है।

(ग) कार्य और कारण सम्बन्धी विरोध मे विभावना और विशेषोक्ति होते हैं।

२४. विरोधाभास और असंगति

विरोधाभास—साथ न रहने वाली वस्तुओं को साथ कर देना।

असंगति—साथ रहने वाली वस्तुओं को अलग-अलग कर वेना।

विरोधाभास—वह जीता ही अहो ! मरा।

जीना और मरना एक साथ नही रह सकते पर यहाँ दोनों को एक साथ रखा गया है।

असंगति—पीर राम-उर में उठी, लग्यो लखन के घाव।

पीड़ा घाव के साथ रहती है। जिस हृदय में घाव लगता है, उसी मे पीड़ा उत्पन्न होती है, पर यहाँ घाव को लक्ष्मण के हृदय में और पीड़ा को राम के हृदय में बताया गया है।

२५. विभावना और विशेषोक्ति

विभावना में कारण के न होने पर भी कार्य हो जाता है।

विशेषोक्ति में कारण के होने पर भी कार्य नही होता।

विभावना—प्यास मिटी पानी बिना मोहन को मुख देख।

विशेषोक्ति—नीर-भरे नित प्रति रहै, तऊ न प्यास बुझाइ।

२६. परिकर और परिकरांकुर

परिकर में साभिप्राय विशेषण का प्रयोग होता है।

परिकरांकुर में साभिप्राय विशेष्य (नाम) का प्रयोग होता है।

परिकर—तुलसिदास भव-व्याल-ग्रसित तव सरन **उरग-रिपु-गामी** !

परिकरांकुर—हरहु शोक मम विटप **अशोका** !

२७. तद्गुण, अतद्गुण और पूर्वरूप

तद्गुण में एक वस्तु दूसरी वस्तु के संपर्क में आने पर उसके गुण को ग्रहण कर लेती है।

अतद्गुण में एक वस्तु दूसरी वस्तु के संपर्क में आने पर उसके गुण को ग्रहण नहीं करती।

पूर्वरूप में एक वस्तु दूसरी वस्तु के संपर्क मे आने पर उसके गुण को ग्रहण करके छोड़ देती है और फिर पहले के समान हो जाती है।

तद्गुण—मुकुत केस मिलि मरकत मनि ह्वै जात।

अतद्गुण—जमुना-जलहु नहाइ कै हंस न कारो होइ।

पूर्वरूप—मुकुत केस मिलि मरकत मनि ह्वै जात।
हाथ लेत पुनि मुकुता सखि ! दिखरात॥

२८. मीलित और उन्मीलित

मीलित में एक वस्तु समान रंगवाली दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर उसमें मिल जाती है (विलीन हो जाती है, अर्थात् अलग दिखायी नही पड़ती)।

उन्मीलित मे एक वस्तु समान रंगवाली दूसरी वस्तु के सम्पर्क मे आने पर उसमें मिल जाती है, पर पीछे किसी कारण से अलग दिखायी पड़ने लगती है।

मीजित—(१) मिलिगे तेरे सुजस गे हंस-चमेलीफूल।
(२) जान्यो परत न सखि ! लग्यो तन में केसर-लेप।

उन्मीलित—(१) मिलिगे तेरे सुजस में हंस-चमेलीफूल।
बोली तें अरु बास तें जानि परै छबि-मूल॥

(२) जान्यो परत सुगन्ध तें तन केसर को लेप।

२९. तद्‌गुण, मीलित और सामान्यक

तद्‌गुण में दो वस्तुएँ होती हैं **जिनके रंग अलग-अलग होते हैं।** एक वस्तु दूसरी के संपर्क में आने पर अपने रंग को छोड़कर दूसरी के रंग को ग्रहण कर लेती है।

मीलित में दो वस्तुएँ होती है **जिनके रंग समान होते हैं**। एक वस्तु दूसरी के संपर्क में आने पर, रंग-साम्य के कारण, उसमें विलीन हो जाती है और अलग दिखायी नही पड़ती।

सामान्यक में दो वस्तुएँ होती है, **जिनके रंग ही नहीं किन्तु रंग और रूप दोनों समान होते हैं**। एक वस्तु दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर, रूप-रंग के साम्य के कारण, पहचानी नही जा सकती; दो वस्तुएँ अलग-अलग दीख पड़ती हैं, पर दोनों इतनी समान दीख पड़ती है कि यह मालूम करना संभव नही होता कि कौन क्या है।

तद्‌गुण और सामान्यक में दोनों वस्तुएँ अलग-अलग लक्षित होती है; मीलित में एक ही वस्तु लक्षित होती है, दूसरी उसमें मिलकर अलक्षित हो जाती है।

तद्‌गुण में दोनों का केवल रंग समान हो जाता है, रूप समान नहीं होता। सामान्यक में रूप और रंग दोनों समान होते हैं जिसके कारण दोनों के अलग-अलग दिखायी पड़ने पर भी दोनों में भेद करना (दोनों को अलग-अलग पहचान लेना) संभव नहीं होता।

तद्‌गुण—मुकुत केस मिलि मरकत-मनि ह्वै जात।

मीलित—जान्यो परत न सखि ! लग्यो तन केसर को लेप।

सामान्यक—(१) भरत-राम एकै अनुहारी।
महसा लखि न सकैं नर-नारी॥

(२) कागन में कोयल मिली, ना पहचानी जाय।

३०. परिसंख्या और यथासंख्य

(क) दोनो में समानता इतनी ही है कि दोनों में संख्या शब्द आता है।

(ख) परिसंख्या में किसी बात की स्थापना दूसरी बातों के वर्जन के लिए की जाती है (अथवा किसी बात की एक स्थान में स्थापना दूसरे स्थानों में उसके वर्जन के लिए की जाती है)।

यथासंख्य में जिस क्रम से कुछ बातां का कथन होता है, उसी क्रम से उनसे सम्बन्धित दूसरी बातों का कथन होता है।

परिसंख्या—

(१) होम-धूम-मलिनाई जहाँ।
मति चंचल चलदल है वहाँ॥

(२) नृपति राम के राज में शंकर के कर शूल।

यथासंख्य—

कहा नृपति पारस कहा, कहा चन्दन, कहा भृंग ?
रंक, लोह, तरु, कीट जो परसि न पलटैं अंग।

३१. श्लेष और मुद्रा

(क) दोनों में अनेकार्थक शब्द प्रयुक्त होते है।

(ख) श्लेष में दोनों अर्थ प्रसंग में लगते है, मुद्रा में एक ही अर्थ प्रसंग में लगता है। श्लेष में सब अर्थों में अलग-अलग वाक्य बनते हैं; मुद्रा में वाक्य एक ही अर्थ में बनता है, दूसरे अर्थ में वाक्य नहीं बनता।

श्लेष—**पानी** गये न ऊबरैं मोती मानुष चून।

मुद्रा—**नां रंगी** हौं पीव सों, यह **अनार**पन मोहि।

(६) अलंकारों की सारणी

शब्दालंकार

अलंकार का नाम	भेद	लक्षण	उदाहरण
१. अनुप्रास		वर्ण की आवृत्ति।	
	छेकानुप्रास	(१) एक वर्ण की एक आवृत्ति।	१. **बो**ले **ब**चन राम नय-**ना**गर।
		(२) अनेक वर्णों की एक आवृत्ति।	२. **म**धुर **मा**धवी लता लिखी।
	वृत्त्यानुप्रास	(१) एक वर्ण की अनेक आवृत्ति।	१. **स**त्य **स**नेह **सी**ल **सु**ख सागर।
		(२) अनेक वर्णों की अनेक आवृत्ति।	२. **क**ल **का**लिन्दी **कू**ल की बाल-**के**लि सुखमूल।
	अंत्यानुप्रास	शब्दों के अन्त में अन्तिम दो स्वरों की मध्य के व्यञ्जन-सहित आवृत्ति।	नभ **ला**ली **चा**ली निसा चटका**ली** धुनि कीन्ह।
	श्रुत्यनुप्रास	एक स्थान से उच्चारण होने वाले बहुत-से वर्णों का प्रयोग।	**तु**लसिदास **सी**दत **नि**सिदिन **दे**खत **तु**म्हारि **नि**ठुराई।
२. लाटानुप्रास		शब्द की आवृत्ति, प्रत्येक वार अर्थ अभिन्न, पर अन्वय भिन्न।	हे **उत्तरा के** धन ! रहो तुम **उत्तरा** के पास में।

३. पुनरुक्तिप्रकाश (वीप्सा)		शब्द की आवृत्ति, प्रत्येक बार अर्थ अभिन्न और अन्वय भी प्रत्येक बार अभिन्न।	**बनि-बनि-बनि** बनिता चली, **गनि-गनि-गनि** डग देत।
४. यमक		(१) शब्द की आवृत्ति भिन्न अर्थ में। (२) शब्दांश की आवृत्ति।	(१) **कदंब** के पुष्प-**कदंब** की छटा। (२) **विदार**ता था तरु को**विदार** का।
५. श्लेष		अनेक अर्थ देने वाले शब्द का प्रयोग।	**पानी** गये न **ऊबरैं** मोती मानुष चून।
६. वक्रोक्ति-		एक अर्थ में कहे हुए कथन का दूसरा अर्थ कल्पित करना।	कौन द्वार पर ? **हरि** मैं राधे ! क्या **बानर** का काम यहाँ ?
७. पुनरुक्तवदाभास		जब अर्थ की पुनरुक्ति दिखायी पड़े पर वास्तव में न हो।	**सुमन फूल** खिल उठे लखो, **मानस** में, **मन** में

अलंकार का नाम	भेद	वाचक-शब्द	लक्षण	उदाहरण
१. उपमा	....	सा, समान, सम, सदृश, सरिस, तुल्य, इव, यथा, जैसे, जैसा, ऐसा, ज्यों, यों, जिमि, तिमि।	जब किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु के समान कहा जाय।	१. मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है। २. मुख चन्द्रमा के समान है।
	(१) पूर्णोपमा		जब उपमेय, उपमान, वाचक-शब्द और साधारण-धर्म चारों शब्दों में कहे गये हों।	मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है।
	(२) लुप्तोपमा		जब इनमें से कोई एक या दो या तीन लुप्त हों (शब्दों में नही कहे गये हों)।	
	धर्म-लुप्ता		जब धर्म लुप्त हो।	मुख चन्द्रमा के समान है।
	वाचक-लुप्ता		जब वाचक-शब्द लुप्त हो।	मुख-चन्द्र सुन्दर है।
	धर्म-वाचक-लुप्ता		जब धर्म एवं वाचक-शब्द दोनों लुप्त हो।	चन्द्र-मुख।

	समुच्चयोपमा	(उपमा की भाँति)	जब धर्म अनेक हों पर उपमान एक ही हो।	मुख चन्द्र के समान सुन्दर एवं कान्तिमान है।
२. मालोपमा		(उपमा की भाँति)	जब उपमान अनेक हों।	...
	एक-धर्मा			मुख चन्द्र और कमल के समान सुन्दर हैं।
	भिन्न-धर्मा			मुख चन्द्र के समान सुन्दर और कमल के समान कोमल है।
३. उपमेयोपमा		(उपमा की भाँति)	जब पहले उपमेय को उपमान के समान कहकर फिर उपमान को उपमेय के समान कहा जाय।	मुख चन्द्र के समान सुन्दर है और चन्द्र मुख के समान सुन्दर है।
४. अनन्वय		(उपमा की भाँति)	जब उपमेय को उपमेय के ही समान कहा जाय।	मुख मुख के ही समान सुन्दर है।

अलंकार का नाम	भेद	वाचक-शब्द	लक्षण	उदाहरण
५. रूपक			जब उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाय या उपमेय को उपमान का रूप दिया जाय।	
	अभेद		जब उपमेय को उपमान बनाया जाय और दोनों में कुछ भेद न रखा जाय।	मुख चन्द्रमा है।
	तद्रूप	दूसरा, अन्य, और अपर इत्यादि।	जब उपमेय को उपमान बनाया जाय और दोनों में कुछ भेद रखा जाय।	मुख दूसरा चन्द्रमा है।
	सांग		जब उपमेय को उपमान का आरोप करके उपमान के अंगों का आरोप भी उपमेय के अंगों पर किया जाय।	मुख चन्द्र है, हास चन्द्रिका है, कस्तूरी बिन्दु मृग है।

	निरंग		जब केवल उपमान का आरोप किया जाय) और उसके अंगों का आरोप न किया जाय।	मुख-चन्द्र।
	परंपरित		जब एक रूपक का कारण एक दूसरा रूपक हो।	कृष्ण का मुख भक्त-रूप चकोरों के लिए चन्द्र है।
६. उत्प्रेक्षा		मानो, मनु, मनहुं, मानहुँ, जनु, जानहुं, जाने, सा	जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु माना जाय, एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सम्भावना या कल्पना की जाय।	मुख मानो चन्द्र है।
	वस्तु		जब एक वस्तु को दूसरी माना जाय।	१. मुख मानो चन्द्र है। २. दिशाएँ मानो रो रही हैं।
	हेतु		जब अहेतु को हेतु माना जाय।	मानो मुख से लज्जित होकर चन्द्र आकाश में भाग गया।

अलंकार का नाम	भेद	वाचक-शब्द	लक्षण	उदाहरण
	फल		जब अफल को फल माना जाय ।	मानो मुख की समता पाने के लिए चन्द्र आकाश में परिक्रमा करता है ।
	(गम्य)		जब वाचक-शब्द लुप्त हो ।	मुख से लज्जित होकर चन्द्रमा छिप गया ।
७. प्रतीप	....	(उपमा की भाँति)	जब उपमेय के आगे उपमान का तिरस्कार किया जाय ।	....
	प्रथम		जब उपमान को उपमेय के समान बताया जाय ।	चन्द्र मुख के समान सुन्दर है ।
	द्वितीय		जब उपमान से उपमेय का अनादर कराया जाय ।	हे मुख ! क्या गर्व करता है, आकाश में चन्द्र तेरे ही समान है ।

	तृतीय		जब उपमेय से उपमान का अनादर कराया जाय ।	हे चन्द्र ! क्या गर्व करता है, राधा का मुख तेरे ही समान है ।
	चतुर्थ		जब उपमान को उपमेय की उपमा के अयोग्य बताया जाय ।	चन्द्र मुख के समान नहीं हो सकता ।
	पंचम	व्यर्थ है, इत्यादि ।	जब उपमेय उपमान का कार्य कर सकता है तो उपमान व्यर्थ या अनावश्यक है, यह कहकर उपमान को व्यर्थ कहा जाय ।	जब मुख ही प्रकाश कर देता है तो चन्द्र का क्या काम ?
८. व्यतिरेक			जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कोई बात अधिक बतायी जाय ।	मुख सुन्दर है चन्द्र-सा, मधुर वचन सविशेष ।

अलंकार का नाम	भेद	वाचक-शब्द	लक्षण	उदाहरण
९. स्मरण			जब पहले देखी या सुनी हुई वस्तु का स्मरण तत्सदृश दूसरी वस्तु को देखकर हो।	पूरब दिसि ससि उगेउ सुहावा। सिय मुख-सरिस देखि सुख पावा॥
१०. भ्रान्ति-मान			जब गलती से उपमेय को उपमान समझ लिया जाय।	यह (=मुख) चन्द्र है।
११. सन्देह		या, अथवा, किधौ, कैधौ कि, कै, क्या इत्यादि।	जब उपमेय में कई वस्तुओं के होने की सम्भावना जान पड़े और निश्चय न हो सके।	यह मुख है या चन्द्र है या कमल है।
१२. अपह्नुति		नहीं, व्याज, बहाने इत्यादि।	जब एक बात का निषेध करके अन्य बात की स्थापना की जाय।	यह मुख नहीं, चन्द्र है।

अपह्नुति	शुद्ध	नही, न	सत्य बात का निषेध, असत्य की स्थापना (उपमेय का निषेध, उपमान की स्थापना)।	यह मुख नही, चन्द्र है।
	हेतु	,,	सत्य का निषेध एवं असत्य की स्थापना करके साथ में ऐसा करने का हेतु भी बताना।	यह मुख नहीं, चन्द्र है, क्योंकि (प्रेमियों-रूपी) कमलों को जलाता है।
	पर्यस्त	,,	किसी वस्तु के धर्म का उस वस्तु में निषेध करके अन्य वस्तु में बताना।	मुख मुख नहीं है, चन्द्र ही मुख है।
	छेक	,,	सत्य बात का निषेध करके चतुराई मे असत्य बात बना देना।	अर्धरात वह उदयो भौन सुन्दरता बरनै कवि कौन ? देखत ही मन भयो अनन्द क्यों सखि ! पियमुख ? ना सखि ! चन्द।
	कैतव	मिस, बहाने से, व्याज से इत्यादि।	मिस आदि शब्दों से सत्य का निषेध और असत्य का स्थापन।	मुख के बहाने चन्द्र उदय हुआ।

अलंकार का नाम	भेद	वाचक-शब्द	लक्षण	उदाहरण
	भ्रांत		किसी की भ्रांति को दूर करने के लिए उपमान का निषेध करके उपमेय की स्थापना करना ।	'आज देख घनश्याम-छटा को मन में मगन हुई ।' 'मिले कहाँ घनश्याम !' 'मेघ की मैंने बात कही !'
१३. दीपक			जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत को एक ही धर्म से अन्वित किया जाय ।	**सोहत** मुख कल हास सों, अमल चन्द्रिका चन्द ।
१४. तुल्ययोगिता			जब अनेक प्रस्तुतों को, या अनेक अप्रस्तुतों को, एक ही धर्म से अन्वित किया जाय ।	गुरु, रघुपति, सब मुनि मन माहीं । **मुदित भये पुनि-पुनि पुलकाहीं** ।।
१५. सहोक्ति		साथ, और साथ का अर्थ देने वाले शब्द	जब दो विजातीय बातों को 'साथ' या उसके किसी पर्याय शब्द द्वारा एक ही क्रिया या धर्म से अन्वित किया जाय ।	नाक पिनाकहि **संग सिधायी** ।

१६. प्रति-वस्तूपमा			जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत कथनों का एक ही धर्म हो और वह दोनों कथनों में भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कहा जाय ।	मुख सोहत मुसक्यान सों, लसत जुन्हैया चन्द ।
१७. दृष्टान्त			जब कोई बात कहकर उससे मिलती-जुलती दूसरी बात कही जाय । जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत कथनों का धर्म मिलता-जुलता हो (एक नहीं ।)	सहृदय जन ही काव्य का लेते हैं आनन्द । पीते हैं अलिवृन्द ही अमल कमल-मकरन्द ॥
१८. अर्थान्तर-न्यास			जब सामान्य कथन का विशेष कथन से या विशेष कथन का सामान्य कथन से समर्थन किया जाय ।	
	प्रथम		एक सामान्य बात कहकर उसके समर्थन के लिए विशेष बात कहना ।	टेढ़ जानि संका सब काहू । वक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू ॥

अलंकार का नाम	भेद	वाचक-शब्द	लक्षण	उदाहरण
अर्थान्तरन्यास	द्वितीय		एक विशेष बात कहकर उसके समर्थन के लिए सामान्य बात कहना ।	१. रघुपति-बल पाहन तरे, करैं कहा न महान । २. वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू । टेढ़ जानि संका सब काहू ॥
१९. उदाहरण		ज्यों, जैसे, जिमि. जस, जथा, यथा आदि 'जो' सर्वनाम से बने उपमावाचक शब्द ।	जब एक सामान्य बात कहकर उसके उदाहरण-रूप में एक विशेष बात कही जाय और दोनों कथनों को उपमावाचक 'ज्यों' आदि किसी शब्द से जोड़ दिया जाय ।	जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान । ज्यों तपि-तपि मध्याह्न लौं अस्त होत है भान ॥
२०. काव्यलिंग			जब कोई कथन किया जाय और उसका समर्थक हेतु भी साथ में कहा जाय ।	कनक कनक तैं सौ गुनी मादकता अधिकाय । वह खाये बौरात जग, यह पाये बौराय ॥
२१. निदर्शना			जब दो वस्तुओं या दो कार्यों या दो कथनों को समान बताने के लिए उनको एक बताया जाय ।	१. हीरा-जोति सो तेहि परछाही । २. कविता समझाइबो मूरख को, सविता गहि भूमि पै डारिबो है ।

२२. अप्रस्तुत-प्रशंसा (अन्योक्ति)			जब अप्रस्तुत से प्रस्तुत अर्थ निकले ।	माली आवत देखकर, कलियन करी पुकार । फूले-फूले बिन लिये, काल्ह हमारी बार ।।
२३. समा-सोक्ति			जब प्रस्तुत अर्थ से एक अप्रस्तुत अर्थ भी निकले ।	कुमुदिनी हू प्रफुलित भयी साँझ कलानिधि जोइ । (प्रिय को देख नायिका प्रसन्न हुई)
२४. अति-शयोक्ति			जब लोक-सीमा का उल्लंघन करके कोई बात कही जाय ।	....
	सम्बन्धा		सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताना (अयोग्य में योग्यता) ।	फबिफहरैं अतिउच्चनिसाना । जिन महँ अटकत बिबुध बिमाना ।।
	असम्बन्धा		सम्बन्ध होने पर भी सम्बन्ध का निषेध करना (योग्य में अयोग्यता) ।	अति सुन्दर लखि सिय ! मुख तेरो । आदर हम न करहिं ससि केरो ।

अलंकार का नाम	भेद	वाचक-शब्द	लक्षण	उदाहरण
	अक्रमा	साथ ही, संग ही।	कारण के साथ ही कार्य हो जाय।	बानन के साथ छूटे प्रान दनुजन के।
	चपला		कारण का ज्ञान होते ही तुरन्त कार्य हो जाय।	बानन देखत छूटे प्रान दनुजन के।
	अत्यन्ता		कारण के पहले ही कार्य हो जाय।	सर छूटे पीछे, प्रथम छूटि गये अरि-प्रान !
	भेदका	और ही, औरै, न्यारा, निराला आदि।	और ही, निराला, अनुपम आदि शब्दों द्वारा उपमेय की अत्यन्त प्रशंसा की जाय।	मुख की शोभा कुछ और ही है।
	रूपका		उपमेय का लोप करके केवल उपमान का कथन किया जाय और उपमान के कथन से ही उपमेय का ज्ञान हो जाय।	शशिमण्डल में चपल मीन दो खेलते। (मुख में दो चंचल नेत्र हैं।)

अत्युक्ति			अत्यन्त मिथ्यापूर्ण कथन करना ।	जाचक तेरे दान से भले कल्पतरु भूप !
२५. स्वभावोक्ति			जब किसी वस्तु या व्यक्ति के स्वभाव का यथातथ्यपूर्ण वर्णन किया जाय ।	भोजन करत चपल चित्त इत-उत अवसर पाइ । भाजि चले किलकात मुख दधि-ओदन लपटाइ ॥
२६. विरोधाभास			जब देखने में विरोध हो पर वास्तव में विरोध न हो ।	कितौ **मिठास** दई दयो इते **सलोने** रूप ।
२७. असंगति			जब साथ रहने वाली वस्तुओं को अलग-अलग स्थानों में रखा जाय ।	
	प्रथम		जब कारण कहीं और कार्य कही हो ।	सीतहिं लै दसकन्ध गयो, पै गयो है विचारो समुन्दर बाँध्यो ।
	द्वितीय		जब कही करने का कार्य कही किया जाय ।	पाँयन की सुधि भूल गयी, अकुलाय महावर आँखिन दीनो ॥
	तृतीय		जब जो कार्य करना इष्ट हो, उसके विपरीत कार्य किया जाय ।	आये जीवन देन घन, लागे जीवन लेन ।

अलंकार का नाम	भेद	लक्षण	उदाहरण
२८. विशेषोक्ति		कारण होने पर भी कार्य का न होना ।	नीर भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ।
२९. विभावना		कारण के सम्बन्ध में विलक्षण कल्पना करना ।	
	प्रथम	**बिना कारण कार्य होना ।**	१. बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना । २. प्यास मिटी पानी बिना, मोहन को मुख देखि ।।
	द्वितीय	अपर्याप्त कारण से कार्य होना ।	सहस सवार जिते सिवा लेकर सौ असवार ।।
	तृतीय	बाधा होने पर भी कार्य हो जाना ।	तेज छत्रधारीन हू अमहन ताप करन्त ।
	चतुर्थ	जो कारण न हो उस कारण से कार्य का होना ।	वीणानाद जु शंख सों. होत, सुनो दे कान ।
	पंचम	विरुद्ध कारण से कार्य होना ।	सखी ! करत संताप मोहि. सीतल-किरन-मयंक ।

	षष्ठ	कार्य से कारण का होना ।	नयन-मीन तें प्रकट भइ, देखहु, सरिता-धार ।
३०. व्याजस्तुति		जब नींदा के बहाने स्तुति या स्तुति के बहाने निंदा की जाय ।	
	व्याजस्तुति	निंदा के बहाने स्तुति की जाय ।	शंभु सरिस पतितनि करै, तू अविवेकिनि गंग !
	व्याजनिंदा	स्तुति के बहाने निंदा की जाय ।	राम साधु, तुम साधु सुजाना !
३१. उल्लेख		जब एक वस्तु का एक व्यक्ति के अनेक दृष्टिकोणों से, या अनेक व्यक्तियों के अनेक दृष्टिकोणों से कथन किया जाय ।	१. गुनिजन हित तु कल्पतरु, शत्रुन हित तू काल । प्रजा हेत सुरनाथ तू, हे जसवंत भुवाल ! २. गुनी कहैं तोहि कल्पतरु, शत्रु कहैं तोहि काल । प्रजा कहै सुरनाथ तोहि, हे जसवंत भुवाल !

अलंकार का नाम	लक्षण	उदाहरण
३२. परिकर	साभिप्राय विशेषण का प्रयोग ।	तुलसिदास भव-व्याल-ग्रसित तव सरन **उरगरिपुगामी** !
३३. परिकरांकुर	साभिप्राय विशेष्य या नाम का प्रयोग ।	मेरे प्रखर शरों के आगे भाग चलोगे तुम **रणछोड़** !
३४. तद्गुण	जब एक वस्तु दूसरी के सम्पर्क में आने पर उसके गुण को ग्रहण कर ले । (दोनों वस्तुएँ अलग-अलग दीख पड़ती हैं ।)	१. सेत कमल कर लेत ही अरुन-कमल-छबि देत । २. केस-मुकुत सखि ! मकरत-मनिमय होत ।
३५. अतद्गुण	जब एक वस्तु दूसरी के संपर्क में आने पर उसके गुण को ग्रहण न करे ।	जमुना-जलहु नहाइ कै हंस न कारो होइ ।
३६. पूर्व रूप	जब एक वस्तु दूसरी के संपर्क में आने पर उसके गुण को ग्रहण कर ले पर पीछे किसी कारणवश उस गुण को छोड़कर अपने गुण को फिर ग्रहण कर ले ।	केस-मुकुत सखि ! मरकत मनिमय होत । हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ।।

३७. मीलित	जब एक वस्तु समान रंग की दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर उसमें लीन हो जाय और अलग दिखायी न पड़े (दोनों वस्तुएँ मिल जाती हैं, अलग-अलग दिखायी नहीं पड़तीं)।	१. यह उज्ज्वल प्रासाद चाँदनी में मिल एकाकार। २. मिलिगे तरे सु-जस में हंस चमेली-फूल। ३. चंपक-हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ।
३८. उन्मीलित	जब एक वस्तु दूसरी समान रंग की वस्तु के सम्पर्क में आने पर उसमें लीन हो जाय पर पीछे किसी कारणवश अलग दिखायी पड़ने लगे।	१. चंपक-हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ। जानि परै सिय-हियरे जब कुम्हिलाइ। २. सिव सरजा ! तब सुजस में मिले धवल छबि-मूल। बोल-बास तें जानियत हंस चमेली-फूल॥
३९. सामान्यक	जब एक वस्तु समान रूप-रंग वाली दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर अलग पहचानी न जा सके (दोनों वस्तुएँ अलग-अलग दीख पड़ती हैं पर पहचानी नहीं जाती)।	भरत-राम एकै अनुहारी। सहसा लखि न सकै नर-नारी॥
४०. विशेषक	जब एक वस्तु समान रूप-रंग वाली दूसरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर पहचानी न जा सके पर पीछे किसी कारणवश पहचान ली जाय।	कागन में मृदु बोल तें पिक को लियो पिछानि।

अलंकार का नाम	लक्षण	उदाहरण
४१. परिसंख्या	(१) जब किसी बात का कथन दूसरी बातों के वर्जन के लिए किया जाय। (२) जब किसी वस्तु का एक स्थान में कथन अन्य स्थानों में उसका वर्जन करने के लिए किया जाय।	१. होम-धूम मलिनाई जहाँ। अति चंचल चलदल है वहाँ॥ २. नृपति राम के राज में संकर के कर सूल।
४२. यथासंख्य	जब जिस क्रम से कुछ वस्तुओं का उल्लेख किया जाय, उसी क्रम से उनसे सम्बन्धित वस्तुओं का उल्लेख भी किया जाय।	१. कहा नृपति, पारस कहा कहा चंदन, कहा भृंग ? रंक लोह तरु कीट जो परसि न पलटै अंग॥ २. बोल-बास तें जानियत हंस चमेली-फूल।
४३. मुद्रा	जब वाक्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय जो प्रसंग का अर्थ देने के अतिरिक्त किसी वर्ग की, या परस्पर-सम्बन्धित, कई वस्तुओं के नामों को भी सूचित करें।	**ना रंगी** हौं पीव सों, यह **अनार**पन मोहि।

खण्ड २
शब्द-शक्ति

(१) शब्द के तीन प्रकार

(१) वाचक—जो वाच्यार्थ को प्रकट करे।
(२) लक्षण—जो लक्ष्यार्थ को प्रकट करे।
(३) व्यंजक—जो व्यंग्यार्थ को प्रकट करे।

(२) अर्थ के तीन प्रकार

(१) वाच्यार्थ—शब्द का लोक-प्रसिद्ध अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है। इसे अभिधेयार्थ और मुख्यार्थ भी कहते हैं। जैसे—

सिंह दहाड़ उठा।

यहाँ **सिंह** शब्द का अर्थ एक विशिष्ट **पशु** का है।

(२) लक्ष्यार्थ—जब प्रसंग में वाच्यार्थ नहीं लगता तब उससे सम्बन्ध रखने वाला एक दूसरा अर्थ लगाया जाता है। इस दूसरे अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं। जैसे—

लाजपतराय **पंजाब** के **सिंह** थे।

यहाँ **सिंह** का पशु वाला अर्थ नही लग सकता। अतः **सिंह के समान वीर** अर्थ लगाया। यह अर्थ लक्ष्यार्थ होगा।

(३) व्यंग्यार्थ—कभी-कभी वाच्यार्थ (या लक्ष्यार्थ) के लग जाने पर भी एक दूसरा अर्थ सूचित होता है। यह अर्थ व्यंग्यार्थ कहा जाता है। इसको ध्वनि भी कहते हैं। जैसे—

[दो विद्यार्थी प्रतिदिन संध्या होते ही घूमने जाया करते हैं। उनमें से एक अपने साथी से कहता है—]

संध्या हो गयी।

इस वाक्य का मुख्यार्थ है—सूर्यास्त होने का समय हो गया। यहाँ यह

अर्थ तो है ही पर एक अर्थ और निकलता है कि घूमने को चलने का समय हो गया, घूमने चलो। यह दूसरा अर्थ व्यंग्यार्थ होगा।

(३) शब्द की तीन शक्तियाँ

शब्द का अर्थ प्रकट करने की शक्ति को शब्द-शक्ति कहते है। इसके तीन प्रकार हैं :

(१) अभिधा—शब्द की वह शक्ति जिससे वाच्यार्थ प्रकट होता है।

(२) लक्षणा—शब्द की वह शक्ति जिससे लक्ष्यार्थ प्रकट होता है।

(३) व्यंजना—शब्द की वह शक्ति जिससे व्यंग्यार्थ प्रकट होता है।

(४) वाचक-शब्द के तीन प्रकार

(१) रूढ़—वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति नहीं होती, और यदि होती है तो शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति-जन्य अर्थ से भिन्न होता है। जैसे—घोड़ा, घड़ा, मुँह, ठण्डा, गाय, जल, मण्डप।

(२) यौगिक—वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति होती है और जिसका अर्थ व्युत्पत्ति-जन्य अर्थ से भिन्न नहीं होता। जैसे—भलाई, पानी-घर, दो-मुँहा, शारीरिक, सुन्दरता, बुढ़ापा, अन्न-जल।

(३) योगरूढ़—वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति होती है पर जिसका अर्थ व्युत्पत्ति-जन्य अनेक अर्थों में से केवल एक तक ही सीमित हो जाता है। जैसे—पंकज, सरसिज, लम्बोदर, गणेश, महेश।

पंकज का व्युत्पत्ति-जन्य अर्थ है—पंक से उत्पन्न होने वाला, पर पंक से उत्पन्न होने वाले प्रत्येक पदार्थ को पंकज नही कहते, केवल कमल को पंकज कहते हैं। इस प्रकार पंकज शब्द कमल के अर्थ में रूढ़ हो गया है।

(५) वाच्यार्थ के दो भेद

(१) अवयवार्थ—वह अर्थ जो शब्द के अवयवों का अर्थ हो अर्थात् जो व्युत्पत्ति पर निर्भर रहता हो।

(२) समुदायार्थ—वह अर्थ जो शब्द के अवयवों का अर्थ न हो, सामूहिक रूप से सारे शब्द का अर्थ हो।

रूढ़ शब्द का केवल समुदायार्थ होता है, यौगिक का केवल अवयवार्थ होता है और योगरूढ़ शब्द में अवयवार्थ और समुदायार्थ दोनों होते हैं।

(६) लक्षणा के प्रकार

लक्षणा के मुख्यतः दो प्रकार होते हैं—(१) उपादान-लक्षणा, (२) लक्षण-लक्षणा।

(१) उपादान-लक्षणा

जब लक्ष्यार्थ में वाच्यार्थ सम्मिलित रहता है अर्थात् जब वाच्यार्थ सर्वथा परित्यक्त नही होता। इसे अजहत्स्वार्था (अपने वाच्यार्थ को न छोड़ने वाली) लक्षणा भी कहते हैं। जैसे—

(१) हाथ-पैर बचाते हुए काम करो।

यहाँ हाथ-पैर का अर्थ 'शरीर के अंग' होगा। शरीर के अंगों में हाथ-पैर भी सम्मिलित हैं।

(२) दो बन्दूकों ने सारे गाँव को लूट लिया।

यहाँ बन्दूकों का अर्थ बन्दूक-धारी मनुष्यों से है। बन्दूक-धारी मनुष्यों में बन्दूकें भी सम्मिलित है।

(२) लक्षण-लक्षणा

जब लक्ष्यार्थ में वाच्यार्थ सम्मिलित नहीं होता अर्थात् जब वाच्यार्थ सर्वथा परित्यक्त हो जाता है। इसे जहत्स्वार्था (अपने वाच्यार्थ को छोड़ देने वाली) लक्षणा भी कहते हैं। जैसे—

(१) यह बालक सिंह है।

यहाँ सिंह का अर्थ 'वीर' होगा।

(२) राजस्थान जाग उठा।

यहाँ राजस्थान का अर्थ 'राजस्थान के निवासी' होगा।

(३) दोनों घरों मे लड़ाई है।

यहाँ घरों का अर्थ 'घरवालों' होगा।

(४) रघुवंश पढ़ो।

यहाँ रघुवंश का अर्थ 'रघु का वंश' नहीं होगा किन्तु 'रघु के वंश का वर्णन करने वाला ग्रन्थ' होगा।

(५) कोयल गा रही है।

यहाँ कोयल का अर्थ 'कोयल के समान मीठे स्वर वाली बालिका' है।

लक्षणा के अतिरिक्त उदाहरण

(१) **पंजाब** वीर है। (पंजाब की जनता)
(२) यह लड़का **गधा** है। (गधे के समान निर्बुद्धि)
(३) **सारा गाँव** भूखों **मर रहा है**। (सारे ग्रामवासी)
(४) मेरा घर **गंगा नदी पर है**। (गंगा नदी के तट पर)
(५) दूध **जीवन** है। (जीवन देने वाला)
(६) राममूर्ति इस युग के **भीम** हैं। (भीम के समान बलवान)
(७) यह ब्राह्मण **चमार है**। (चमार जैसे कर्म करने वाला)
(८) आपका क्या कहना है ! बड़े **सज्जन** है आप ! (अ-सज्जन)
(९) रे ! **दो दिन** का यौवन। (थोड़े दिनों का, क्षणस्थायी)
(१०) पीछे है **पशुता का खंडहर, दानवता का** सामने नगर।
(११) **पैर नहीं पड़ते थे भू पर, था दिमाग पहुँचा असमान।**
(१२) **फली** सकल मन-कामना, **लूट्यो** अगनित चैन।
(१३) **सोयी** है वेदना हमारी, उसको **नहीं जगाओ**।
(१४) **कानों** में चुपके-चुपके से कोई **मधु-धारा घोल रहा**।
(१५) जीवन भी जब **जीवन** है, तब सजीवता है जन की।
(१६) **हिलावें जो वे होठों को, फूल तो मुँह से झड़ जावें।**
(१७) चारु चन्द्र की चंचल किरणें **खेल रही हैं** जल-थल में।
(१८) उद्धव ! हाय **राजहंसी** को तुम **हीरे न चुगाओ**।
(१९) इस **खंडहर** में बिजली सी **उन्मत्त जवानी दौड़ी होगी**।
(खंडहर = बूढ़ा शरीर)
(२०) हुई **वीरता** की **वैभव** के साथ सगाई झाँसी में।
(२१) **स्नेह-हीन** तारों के दीपक, **श्वास-शून्य** थे तरु के पात।
(२२) खुले पलक, फैली **सुवर्ण-छवि,**
जगी सुरभि, डोले मधु-बाल।

(७) व्यंजना के प्रकार

व्यंजना के दो प्रकार होते हैं—(१) शाब्दी, (२) आर्थी।

(१) शाब्दी व्यंजना

जब व्यंजना शब्द में हो। व्यंजना शब्द में है यह तब कहा जाता है जब उस शब्द को बदल देने से व्यंग्यार्थ नष्ट हो जाय। जैसे—

चिरजीवो जोरी, जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ? ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

राधा-कृष्ण की यह जोड़ी चिरंजीवी हो ! परस्पर गहरा प्रेम क्यों नही जुड़े ? दोनों में कौन घटकर है ? ये वृषभानुजा है तो वे हलधर के भाई।

यह वाच्यार्थ है पर वृषभानुजा और हलधर शब्दों के अनेकार्थक होने के कारण एक दूसरा अर्थ भी ध्वनित होता है—

ये वृषम की अनुजा (बैल की छोटी बहिन) है तो वे हलधर (बैल) के भाई हैं। यह विनोदात्मक दूसरा अर्थ व्यंग्यार्थ है।

यहाँ शाब्दी व्यंचना है क्योंकि 'वृषभानुजा' और 'हलधर' के स्थान पर 'वृषभानु-सुता' और 'बलराम' शब्द रख दिये जायें तो उक्त व्यंग्यार्थ नष्ट हो जायगा। शाब्दी व्यंजना में शब्द दो अर्थों वाला होता है—एक अर्थ वाच्यार्थ होता है, दूसरा व्यंग्यार्थ।

(२) आर्थी व्यंजना

जब व्यंजना अर्थ में हो अर्थात् जब शब्द के बदल देने पर भी व्यंग्यार्थ निकलता रहे। जैसे—

(१) संध्या हो गयी।

यहाँ वाच्यार्थ है—सूर्यास्त का समय हो गया।

व्यंग्यार्थ होगा—घूमने को चलने का समय हो गया।

(२) आधी रात हो गयी।

यहाँ वाच्यार्थ होगा—आधी रात का समय हो गया।

व्यंग्यार्थ होगा—भाग निकलने का समय हो गया।

(३) अध्यापक ने ऐसा पढ़ाया कि लड़का सर्वथा सुधर गया।

यहाँ वाच्यार्थ होगा—लड़का सर्वथा सुधर गया।

लक्ष्यार्थ होगा—लड़का सर्वथा बिगड़ गया।

व्यंग्यार्थ होगा—अध्यापक सर्वथा अयोग्य है।

(४) रजनीगन्धा खिल गयी।

यहाँ वाच्यार्थ होगा—रजनीगन्धा के पौधे में फूल खिल गये।

व्यंग्यार्थ होगा—आधी रात हो गयी (क्योंकि रजनीगन्धा आधी रात को पूरी खिलती है)।

दूसरा व्यंग्यार्थ होगा—भाग निकलने का समय हो गया।

नोट—व्यंग्यार्थ का ज्ञान प्रसंग से ही होता है। प्रथम उदाहरण के प्रसंगानुसार अनेक अर्थ हो सकते है। जैसे—

घूमने को जाने का समय हो गया।
सन्ध्या-वन्दन करने का समय हो गया।
घर चलने का समय हो गया।
पाठ बन्द करने का समय हो गया।
सिनेमा चलने का समय हो गया। इत्यादि

लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ में अन्तर

वाच्यार्थ के न लगने पर जो दूसरा अर्थ लगाया जाता है, वह लक्ष्यार्थ होता है।

वाच्यार्थ के लग जाने पर, और यदि वाच्यार्थ न लगे तो लक्ष्यार्थ के लग जाने पर (अर्थात् वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ में से एक के लग जाने पर), जो दूसरा अर्थ निकलता है वह व्यंग्यार्थ होता है।

लक्षणा और व्यंजना में अन्तर

वाच्यार्थ के न लगने पर शब्द की जिस शक्ति से दूसरा अर्थ लगाया जाता है, वह लक्षणा शक्ति होती है।

वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ लग जाने के बाद जिस शक्ति द्वारा एक और अर्थ निकलता है, वह व्यंजना होती है।

खण्ड ३
काव्य-गुण और काव्य-रीति

(क) काव्य-गुण

जैसे मनुष्य में सुशीलता, उदासीनता, वीरता आदि गुण होते है, वैसे ही काव्य में भी गुण होते है। गुणों से ही मनुष्य का महत्व है, उसी प्रकार काव्य के गुण ही काव्य को हृदयस्पर्शी बनाते हैं।

काव्य की आत्मा रस है। रस का उत्कर्ष करने वाली बातों को गुण कहते है।

गुण तीन हैं—(१) प्रसाद, (२) ओज, (३) माधुर्य।

(१) प्रसाद

प्रसाद काव्य का वह गुण है जिसके कारण वाक्य का अर्थ तुरन्त पढ़ने के साथ ही, अर्थात् बिना माथापच्ची किये, समझ में आ जाय।

जैसे सूखे काठ में प्रज्ज्वलित अग्नि सहज ही और शीघ्र ही व्याप्त हो जाती है, वैसे ही प्रसाद गुण वाली रचना को पढ़ते ही उसका अर्थ चित्त में व्याप्त हो जाता है।

प्रसाद का अर्थ है—स्वच्छता या निर्मलता। सरोवर का जल निर्मल हो तो तले तक सब कुछ स्पष्ट दिखायी पड़ता है, इसी प्रकार काव्य में प्रसाद गुण होने से वाक्य का समस्त अर्थ तुरन्त मन में स्पष्ट हो जाता है।

उदाहरण

(१) गुरु तो ऐसा चाहिए, सिख सों कछू न लेइ।
सिख तो ऐसा चाहिए, गुरु को सरबस देइ॥

(२) मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ
भाता मुझे सो नव मित्र-सा है।
देखूँ उसे मै नित बार-बार
मानो मिला मित्र मुझे पुराना॥

(३) देखि सुदामा की दीन दसा करुना करि कै करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सों पग धोये॥

(२) ओज

ओज का अर्थ है तेजस्विता। ओज काव्य का वह गुण है जिसके कारण मन में उत्साह, उत्तेजना या तेजस्विता उत्पन्न होती है।

ओज गुण का सम्बन्ध वीर, रौद्र और बीभत्स रसों से होता है।

निम्नलिखित वर्ण ओज के व्यंजक होते है, वाक्य में उनका प्रयोग होने से ओज की व्यंजना होती है :

(१) ट ठ ड ढ श ष।
(२) दीर्घ र तथा ण।
(३) रेफ (रकार) से संयुक्त वर्ण। जैसे—क्र, र्क, द्र आदि।
(४) अल्पप्राण वर्णों से संयुक्त उनके महाप्राण वर्ण; जैसे—क्ख, च्छ, ट्ठ, त्थ, प्फ, ग्घ, ड्ढ, द्ध, ब्भ आदि।
(५) दुहरे स्पर्श वर्ण; जैसे—क्क, त्त, प्प, न्न, ज्ज, आदि।

उदाहरण

(१) स्व-जाति की देख अतीव दुर्दशा
विगर्हणा देख मनुष्य-मात्र की।
विचार के प्राणि-समूह-कष्ट को
हुए समुत्तेजित वीर-केसरी॥

(२) बढ़ो, करो वीर! स्व-जाति का भला
अपार दोनों विधि लाभ है हमें।
किया स्व-कर्तव्य उबार जो लिया
सु-कीर्ति पायी यदि भस्म हो गये॥

(३) चिक्करहिं दिग्गज डोल महि, अहि लोल सागर खरभरे।
मन हरख सभ गंधर्ब-सुर-मुनि, नाग-किन्तर-दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु, कोटि-कोटिन धावहीं।
जय राम प्रबल-प्रताप कोसल-नाथ गुन-गन गावहीं॥

(३) माधुर्य

माधुर्य काव्य का वह गुण है जो चित्त को पिघलाकर उसे आह्लादित बना देता है। माधुर्य का अर्थ है मिठास। माधुर्य-युक्त रचना को पढ़ने से मन में एक आह्लाद उत्पन्न होता है जो मन को पिघला देता है।

माधुर्य का सम्बन्ध शृंगार, करुण और शान्त रसों से होता है। निम्न-लिखित वर्ण इसके व्यंजक होते है :

(१) ट ठ ड ढ को छोड़कर अपने पंचम वर्ण से संयुक्त स्पर्श वर्ण;
जैसे—ङ्ग, ञ्ज, न्द, म्ब, आदि।

(२) ण को छोड़कर शेष पंचम वर्ण (ङ ञ न म)।

(३) ह्रस्व ण तथा र।

(४) माधुर्य गुण में समास या तो न हो, और हों तो छोटे-छोटे हो।

उदाहरण

(१) मन्द-मन्द मुरली बजावत अधर धरे,
मन्द-मन्द निकस्यो मुकुन्द मधु-बन तें।

(२) जै जग-मंदिर दीपक सुंदर श्री ब्रज-दूलह देव-सहाई।

(३) मधुमय वसन्त जीवन-वन के ! बह अन्तरिक्ष की लहरों में।
कब आये थे तुम चुपके-से रजनी के पिछले पहरों में ? ॥

(४) लता-कुञ्जं गुञ्जन् मदवदलि-पुञ्जं चपलयन्
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्ग प्रबलयन्।
मरुन् मन्दं-मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजो-वृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि ॥

(ख) काव्य-रीति

काव्य में पद-रचना अर्थात् शब्द-योजना को रीति कहते हैं। जैसे शरीर में अंगों की गठनी (अंग-संस्थान या अंग-विन्यास) होती है वैसे ही काव्य में रीति होती है।

पद-रचना को पद-संघटना भी कहा जाता है। विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण में रीति की परिभाषा इस प्रकार दी है—**पद-संघटना रीतिः अंग-संस्था-विशेष-वत्।**

रीति का आधार गुण हैं। इसी कारण रीति को **गुणवत् पद-रचना** अर्थात् गुण-युक्त पद योजना भी कहा गया है। वामन ने रीति का लक्षण इस प्रकार दिया है—**विशिष्टा पद-रचना रीतिः, विशेषः गुणात्मा** अर्थात् विशेषतायुक्त पद-रचना का नाम रीति है और विशेषता से अभिप्राय है गुणों का।

काव्य-रीति के मुख्य दो भेद हैं—(१) वैदर्भी, और (२) गौड़ी।

(१) वैदर्भी रीति

वैदर्भी रीति का आधार माधुर्य गुण है। उसमें प्रधान गुण माधुर्य होता है। उसका बंध या गुंफ (वाक्य रचना) सुकुमार होता है। उसमें समास नहीं होते और यदि होते हैं तो वे छोटे-छोटे दो या तीन शब्दों के होते हैं। उसमें मधुर वर्णों की योजना होती है (ऊपर माधुर्य गुण के वर्णन में देखिये); मूर्धन्य और महाप्राण तथा संयुक्त, द्वित्त (दुहरे) और रेफ के संयोग वाले वर्णों को साधारणतया बचाया जाता है।

उदाहरण

(१) पांयनि नूपुर मञ्जु बजैं, कटि किंकिनि में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै वनमाल सुहाई॥
माथे किरीट, बड़े दृग चञ्चल, मन्द हंसी मुख-चन्द-जुन्हाई।
जै जग-मन्दिर-दीपक सुन्दर श्री ब्रज-दूलह देव-सहाई॥

(२) स्याम के संग सदा हम डोलैं, जहाँ पिक बोलैं, अली-गन गुञ्जैं।
लाहन माह उछाहन सों छहरैं जहँ पीरी पराग की पुञ्जैं॥
बेलिन में, रस-केलिन में कवि देव कछू चित की गति लुञ्जैं।
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते फूलतीं मञ्जुल वञ्जुल-कुञ्जैं॥

टिप्पणी—और उदाहरण माधुर्य गुण के वर्णन में देखें।

(२) गौड़ी रीति

गौड़ी वैदर्भी की विपरीत रीति होती है। गौड़ी रीति का आधार ओज गुण है। उसमें प्रधान गुण ओज होता है। उसकी वाक्य योजना तेजस्विता या औद्धत्यपूर्ण होती है। उसमें समासों की अधिकता होती है और समास भी बड़े-बड़े होते हैं। उसमें ओज-व्यंजक वर्णों की योजना होती है जैसे मूर्धन्य और

महत्प्राण तथा संयुक्त, द्विन्न और रेफ-संयुक्त वर्ण (ओज गुण के वर्णन मे देखिये)।

उदाहरण

(१) भये क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति
त्रोण-सायक कसमसे ।
कोदण्ड धुनि अति चण्ड सुनि
मनुजाद सब मारुत ग्रसे ॥
मन्दोदरी उर कम्प, कम्पित
कमठ भू भूधर त्रसे ।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि,
देखि कौतुक सुर हंसे ॥

(२) हिमाद्रि-तुंग-शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती ।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती ॥
अमर्त्य वीर-पुत्र हो
दृढ-प्रतिज्ञ सोच लो ॥
प्रशस्त पुण्य पंथ है,
बढ़े चलो ! बढ़े चलो !!

टिप्पणी—और उदाहरण ओज गुण के वर्णन में देखें।

टिप्पणी १—वामन आदि ने एक तीसरी रीति और मानी है जिसे पांचाली नाम दिया गया। पांचाली वैदर्भी और गौड़ी के मध्य की रीति है।

टिप्पणी २—कई विद्वान इन रीतियों को ही क्रमश उपनागरिका, परुषा और कोमला वृत्तियों के दूसरे नाम मानते हैं।

———

खण्ड ४
काव्य-दोष

(१) लक्षण

काव्य-दोष उन बातों को कहते हैं जो काव्य-रस के आस्वादन में, अर्थात् काव्य का आनन्द लेने में, बाधा पहुँचाती हैं, जो काव्य के रस की हानि करती हैं।

जैसे सुन्दर भोजन में कोई कंकड़ आ जाता है तो भोजन का समस्त आनन्द नष्ट हो जाता है, वैसे ही काव्य में कोई दोष आ जाता है तो काव्य के समस्त आनन्द को नष्ट कर देता है।

संस्कृत के साहित्य-ग्रन्थों में दिये हुए लक्षण इस प्रकार हैं :

(१) रसापकर्षकाः दोषा। (साहित्य-दर्पण)

रस अर्थात् काव्य के आनन्द को हानि पहुँचाने वाली बातें दोष हैं।

(२) मुख्यार्थ-हतिर् दोषः। (काव्यप्रकाश)

काव्य के मुख्य अर्थ अर्थात् रस की हानि ही दोष है।

(३) उद्वेग-जनको दोषः। (अग्निपुराण)

उद्वेग को उत्पन्न करने वाली बात दोष है।

(२) प्रकार

दोषों के मुख्य तीन प्रकार है :

(१) शब्द-दोष या पद-दोष—वह दोष जो किसी शब्द में हो। शब्द को थोड़ा बदल देने से, या पर्याय-शब्द द्वारा बदल देने से, शब्द-दोष दूर हो जाता है।

उदाहरण

(१) क्षण भर रहा **उजाला** में।

यहाँ **उजाला में** शब्द में च्युतसंस्कृति अर्थात् व्याकरण-विरुद्ध दोष है।

उजाला में के स्थान पर **उजाला में** कर देने से दोष दूर हो जायगा। यहाँ **उजाला में** शब्द स्वतःदूषित है।

(२) खिले फूल सब **गिरा दिया है**।

यहाँ **फूल** बहुवचन है और **गिरा दिया है** एकवचन है। अतः व्याकरण-विरुद्ध दोष है। गिरा दिया है के स्थान पर **गिरा दिये हैं** कर देने से दोष दूर हो जायगा। यहाँ **गिरा दिया** है शब्द स्वतःदूषित नहीं है पर **फूल** शब्द के साथ आने से दूषित है।

(२) **वाक्य-दोष**—जो दोष वाक्य के अनेक (एक से अधिक) शब्दों में, या वाक्य की रचना में हो। प्रथम प्रकार का वाक्य-दोष दूषित शब्दों को बदल देने से और द्वितीय प्रकार का वाक्य-दोष वाक्य-रचना को बदल देने से दूर हो जाता है।

उदाहरण

(१) **मंदिर-अरध** अवधि हरि बदि गये,

हरि-अहार चलि जात।

इसमें **मंदिर-अरध** और **हरि-अहार** का पक्ष और मास अर्थ सहज ही ध्यान में नहीं आता, अतः क्लिष्ट दोष है। दो शब्दों में दोष होने से यह वाक्य-दोष हुआ।

इसमें दूषित शब्दों को पर्याय शब्दों में (पक्ष और मास से) बदल देने से दोष दूर हो जायगा।

(२) अमानुषी भूमि अबानरी करौं।

वक्ता का अभिप्राय है कि भूमि को अमानुषी (मनुष्यों से हीन) और अबानरी (बन्दरों से हीन) कर दूँगा; पर उक्त चरण में शब्द-योजना ऐसी है कि अगुानुषी (मनुष्यहीन) भूमि को अबानरी (बानरों से हीन) कर दूँगा, यह अर्थ ध्यान में आता है।

इस प्रकार वाक्य में शब्द-योजना दूषित होने से यहाँ वाक्य-दोष हुआ। यहाँ **अमानुषी** शब्द को **भूमि** के बाद कर देने से दोष दूर हो जायगा (यद्यपि छन्द बिगड़ जायगा)।

(३) **अर्थ-दोष**—जो दोष अर्थ से सम्बन्ध रखता है। अर्थ-दोष शब्द या शब्दों को पर्याय-शब्द से बदल देने पर भी बना रहता है।

उदाहरण

दृश्य बड़ा था चारु, मंजु सुंदर मनमोहन।

यहाँ मंजु, सुंदर और मनमोहन का वही अर्थ है जो चारु का है। अतः यहाँ अर्थ की पुनरुक्ति हुई है और पुनरुक्त नामक दोष है। इन शब्दों को पर्याय शब्दों से बदल देने पर भी दोष बना रहेगा।

टिप्पणी—इनके अतिरिक्त रस-दोष और अलंकार-दोष भी माने गये हैं। वस्तुतः ये दोनों अर्थ-दोष ही हैं।

(३) दोषों की निर्दोषता

दोष हमेशा ही दोष नहीं होते, कभी-कभी वे निर्दोष भी हो जाते हैं और कभी-कभी तो गुण बन जाते है।

अनुकरण में सभी दोष निर्दोष होते हैं। अनुकरण के अतिरिक्त कुछ विशेष स्थितियों में कई दोष निर्दोष हो जाते हैं और दूसरी स्थितियों में गुण बन जाते हैं।

कुछ दोष (अनुकरण के अतिरिक्त) कभी निर्दोष नहीं होते। ऐसे दोषों को नित्य-दोष कहते हैं। जैसे—च्युतसंस्कृति, अक्रम आदि।

दोष कब निर्दोष या गुण होते हैं, इसके लिए आगे दोषों की सारणी देखिये।

(४) कुछ प्रमुख दोष

कुछ प्रमुख दोषों का वर्णन आगे किया जाता है :

१. च्युतसंस्कृति

जब व्याकरण-विरुद्ध (व्याकरण की दृष्टि से दूषित) शब्द या शब्दों का प्रयोग किया जाय। संस्कृति का आशय यहाँ व्याकरण से है।

उदाहरण

(१) क्षण भर रहा **उजाला में**।

यहाँ **उजाला में** के स्थान पर **उजाले में** होना चाहिए।

(२) **राजे** विराजे मख-भूमि में थे।

यहाँ **राजे** के स्थान पर **राजा** होना चाहिए।

(३) **उमड़ते पड़ते** सर-वृन्द थे।

उमड़ते पड़ते थे शब्द दूषित हैं। **उमड़े पड़ते थे** होना चाहिए।

(४) अरे अमरता के चमकीले पुतलों ! **तेरे** वे जय-नाद ।

यहाँ पुतलों के साथ **तेरे** प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध है, **तुम्हारे** होना चाहिए ।

(५) अरी आँधियों ओ बिजली की ! दिवा-रात्रि **तेरा** नर्तन ।

यहाँ भी **तेरा** के स्थान पर **तुम्हारा** होना चाहिए ।

(६) खिले फूल सब **गिरा दिया** है ।

इसमें **गिरा दिया है** के स्थान पर **गिरा दिये हैं** होना चाहिए ।

(७) निकट अति अनूठे **नीप फूले-फलों के** ।

'नीप फूले-फलों के' के स्थान पर **'फूले-फले नीपों के'** होना चाहिए ।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) अंगद-रक्षा रघुपति **कीन्हो**। (कीन्ही)

(२) यह अवनि फटेगी औ समा **जाउँगी** मैं । (जाऊँगी)

(३) सकल **कामिनि की** कलकंठता । (कामिनियों की)

(४) **दिखा रहा** सम्मुख जो कदंब है । (दीख रहा)

(५) जो बालाएँ विरह-दव में **दग्धिता** हो रही हैं । (दग्ध)

(६) **वों-वों** आँसू अधिकतर हैं लोचनों मध्य आते । (त्यों-त्यों)

२. श्रुतिकटु

जब कानों को उद्वेगजनक परुष वर्णों वाले शब्द या शब्दों का प्रयोग हो । मूर्धन्य वर्ण और संयुक्त वर्ण साधारणतः परुष और श्रुतिकटु होते हैं ।

उदाहरण

(१) कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिन टारि ।

यहाँ शृंगार रस के प्रसंग में टवर्ग के परुष वर्णों वाले शब्दों का प्रयोग कानों को उद्वेगजनक है ।

(२) पावन पद वन्दन करके प्रभु !

कब **कार्त्तार्थ्य** मिले मुझ को ?

यहाँ **कार्त्तार्थ्य** शब्द कर्णकटु है ।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) **शीतलच्छाय सांस्कृतिक** सूर्य ।

(२) है उर्मिल जल **निश्चलत्प्राण** पर शतदल ।

(३) **त्यागोज्जीवित** वह **ऊर्ध्व** ध्यान **धारास्तव** ।

(४) त्रिया-अलक **चक्षुश्रवा** डसै परत ही डीठि ।

(५) पर क्या न **विषयोत्कृष्टता** करती **विचारोत्कृष्टता** ।

टिप्पणी—वीर, रौद्र आदि के प्रसंग में श्रुतिकटु शब्दों का प्रयोग दोष नहीं होता ।

३. अप्रतीत

जब ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाय जो उस अर्थ में किसी विशेष शास्त्र में ही प्रयुक्त होता है ।

उदाहरण

(१) तत्व-ज्ञान पाकर हुए **आशय** दलित समस्त ।

यहाँ **आशय** का अभिप्रेत अर्थ वासना है पर इस अर्थ में यह शब्द योग-शास्त्र में ही प्रयुक्त होता है (इसका यह अर्थ योगशास्त्र में ही प्रसिद्ध है) ।

(२) हिय-तल बसि दुख देत हैं ये तेरे **अनुभाव** ।

यहाँ **अनुभाव** का अर्थ चेष्टाएँ हैं पर इस शब्द का अर्थ अलंकार-शास्त्र में ही प्रसिद्ध है । यह इसका साधारण अर्थ नही ।

४. क्लिष्ट

जब अर्थ सहज ही समझ में न आये, अर्थ समझने के लिए बहुत माथापच्ची करनी पड़े ।

उदाहरण

(१) **हेम-सुता-पति-वाहन** प्रिय ! तुम, इसमें रती न फेर ।

इस पंक्ति में **हेम-सुता-पति-वाहन** शब्द का अर्थ सहज ही ध्यान में नहीं आता (हिमालय की सुता पार्वती के पति शिव के वाहन, अर्थात् बैल, अर्थात् मूर्ख) ।

(२) **मंदिर-अरध** अवधि हरि बदि गये,
हरि-अहार चलि जात ।

कृष्ण **मंदिर के अर्धभाग** की अवधि बताकर गये थे पर **सिंह के आहार** बीते जा रहे हैं । यहाँ **मंदिर-अरध** का अर्थ पन्द्रह दिन और **हरि-आहार** का

अर्थ महीना सहज ही समझ में नहीं आता। [मन्दिर (भवन) का आधा अर्थात् एक पक्ष (पार्श्व, side), अर्थात् पन्द्रह दिन; हरि अर्थात् सिंह का आहार, मांस अर्थात् मास।]

(३) लंका-पुरि-पति को जो भ्राता तासु प्रिया नहिं आवति।

लंकापुरी का पति अर्थात् रावण, उसका भाई कुम्भकर्ण, उसकी प्रिया अर्थात् निद्रा।

(४) सारंग लै सारंग चली, सारंग पूगो आय।
सारंग सारंग में दियो, सारंग सारंग माँय॥

इस पद मे प्रयुक्त सारंग शब्द के विभिन्न अर्थ सहज ही ध्यान में नहीं आते। सारग = १. घड़ा; २. सुन्दरी; ३. बादल (वर्षा); ४. वस्त्र, धोती; ५. घड़ा; ६. सुन्दरी; ७. सरोवर (धोती को भीगने से बचाने के लिए घड़े में दिया और स्वयं जल में चली गयी।)

अतिरिक्त उदाहरण

अजा-सहेली ता रिपू जननी-भरतार।
ताके सुत के मीत को सुमिरौ बारंबार॥ (=कृष्ण)

५. ग्राम्य

जब शिष्ट-समाज में प्रयुक्त न होने वाले, असंस्कृति-सूचक या गँवारू शब्द या शब्दों का प्रयोग किया जाय; या जब शब्द गँवारू न होने पर भी वाक्य का भाव गँवारू हो।

उदाहरण

(१) **मूँड** पै सुकुट धरे सोहत गोपाल हैं।

इपमें मूँड़ शब्द गँवारू है जिसका प्रयोग शिष्ट-साहित्य में नहीं होता।

(२) **मच्चक-मच्चक** मत चलो।

इसमें **मच्चक-मच्चक** शब्द गँवारू है।

६. अश्लील

जब ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाय जो व्रीड़ा (लज्जा) या जुगुप्सा या अमंगल का व्यंजक हो; या जब वाक्य का भाव व्रीड़ा या जुगुप्सा या अमंगल का व्यंजक हो।

अश्लील-दोष में शब्द या वाक्य के प्राय: दो अर्थ होते हैं, एक वाच्य-अर्थ जो प्रसंग में लगता है और दूसरा व्यंग्य-अर्थ जो ध्वनित होता है। यह दूसरा अर्थ व्रीड़ा या जुगुप्सा या अमंगल का बोधक होता है।

व्रीड़ाश्लील और जुगुप्साश्लील में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जो सभ्य या शिष्ट समाज में बोलने योग्य नहीं होते।

उदाहरण

(क) व्रीड़ाश्लील—

हुए मंजरित **चूत** मनोहर।
प्रसूत हो रहा सौरभ सुमधुर।

यहाँ **चूत** शब्द का अर्थ आम है पर यह शब्द अश्लील भी है।

(ख) जुगुप्सा-व्यंजक

(१) रावण के दरबार में स्थित अंगद का **पाद**।

यहाँ **पाद** शब्द जुगुप्सा-व्यंजक है। पाद का वाच्यार्थ है पैर और व्यंग्यार्थ है अपानवायु।

(२) उड़कर धूल पड़ी आँखों में, **दे वायु** प्रिया ने सहलायी।

यहाँ **वायु देना** का अर्थ है फूँक देना पर उसका अर्थ अपानवायु निकालना भी होता है। दूसरे अर्थ में यह शब्द जुगुप्सा-व्यंजक है।

(ग) अमंगलव्यंजक—

(३) **अभिप्रेत पद** प्रिया ने पाया।

यहाँ **अभिप्रेत पद पाया** का अर्थ है अभीष्ट पद प्राप्त किया पर इसमें आये **प्रेत पद पाया** शब्दों से **मर गया** अर्थ भी ध्वनित होता है।

७. न्यून-पद

जब वाक्य में (अर्थ-ज्ञान के लिए) आवश्यक होने पर भी किसी शब्द का प्रयोग न किया जाय।

उदाहरण

(१) सरज लीन्ह साँग पर धाऊ।
परा खड्ग, जनु परा निहाऊ॥

अभिप्रेत अर्थ है खड्ग साँग पर इस प्रकार पड़ा मानो निहाई (अहरन) पर पड़ा हो। यहाँ निहाऊ के आगे **ऊपर** का वाचक कोई शब्द अर्थ-ज्ञान के

लिए आवश्यक है, उसके न होने से ठीक अर्थ नहीं समझा जा सकता, फिर भी उसका प्रयोग कवि ने नहीं किया है।

(२) उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति-परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि॥

उत्तम, मध्यम और अधम जनों की प्रीति क्रमशः पत्थर, रेत और जल **(के ऊपर बनी रेखा)** के समान होती है और उनका बैर इसके विपरीत अर्थात् क्रमशः जल, रेत और पत्थर **(के ऊपर बनी हुई रेखा)** के समान होता है।

यहाँ **ऊपर बनी हुई रेखा** शब्द अर्थ को ठीक से समझने के लिए आवश्यक हैं पर कवि ने उनका प्रयोग नही किया है।

(३) जंघ छपा कदली होइ बारी।

जंघा के **सामने** केला बाड़ी में जाकर छिप गया। यहाँ **सामने** जैसा कोई शब्द अर्थ को समझने के लिए आवश्यक है।

(४) पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु।

जल, अग्नि, पवन और राजा जैसे बुरे के साथ, वैसे ही भले के साथ (बरतते) हैं। यहाँ असाधु और साधु के आगे **प्रति** या **साथ** जैसा कोई शब्द अर्थ समझने के लिए आवश्यक है पर उसका प्रयोग नहीं हुआ है।

८. अधिक-पद

जब वाक्य में अनावश्यक शब्द का प्रयोग किया जाय।

उदाहरण

मन मेरा स्फटिकाकृति-निर्मल रहे सदा गुरुदेव !

स्फटिकाकृति-निर्मल का अर्थ है स्फटिक मणि के समान निर्मल। इस अर्थ को देखने के लिए **स्फटिक-निर्मल** शब्द ही पर्याप्त है। अतः **आकृति** शब्द अनावश्यक या अधिक है।

९. अक्रम

जब वाक्य में शब्द का क्रम वाक्य-रचना की दृष्टि से दूषित या अनुचित हो।

उदाहरण

(१) अ-मानुषी भूमि अ-बानरी करौं।

(भूमि को मनुष्य और बानरों से हीन कर दूँगा) यहाँ अ-मानुषी शब्द भूमि के पूर्व नहीं किन्तु पीछे आना चाहिए अन्यथा यह अर्थ निकलता है कि मनुष्य-हीन भूमि को बानरों से रहित कर दूँगा।

(२) सीताजू रघुनाथ को अमल कमल की माल।
पहिरायी, जनु सबन की हृदयावलि भूपाल॥

यहाँ 'की' विभक्ति-प्रत्यय **भूपाल** शब्द के बाद आना चाहिए।

(३) थी सर्व में अधिक मंजुल मुग्धकारी।
जादू-भरी मुरलिका **पति-राधिका की**॥

यहाँ **पति** शब्द **राधिका** के बाद आना चाहिए।

(४) घंटों लेके **जननि-हरि** को गोद में बैठती थी।

यहाँ जननि-हरि शब्द में हरि शब्द जननि के पूर्व होना चाहिए (राधा हरि की जननी यशोदा को घंटों गोद में लेकर बैठी रहती थीं)।

टिप्पणी—संस्कृत के साहित्यकारों ने अक्रम-दोष केवल निपात (अव्यय) शब्दों के अनुचित क्रम में ही माना है, जैसे ऊपर उदाहरण (२) में।

अतिरिक्त उदाहरण

(१) उच्छ्वास था न अब **प्लावन-फूल-कारी**।
(फूल-प्लावनकारी)

(२) कड़े **पदाघात-बलिष्ठ-वाजि से**।
(बलिष्ठ-वाजि-पराघात से)

(३) इस स-ओज **सुभाषण-श्याम से**। (श्याम-सुभाषण से)

(४) बातें **धावा-मगधपति** की सत्तरा बार फैलीं।
(मगधपति-धावा को)

१०. दुष्क्रम

जब **क्रम** शास्त्र अथवा लोक की दृष्टि से दूषित या अनुचित हो।

उदाहरण

(१) मारुत-नंदन मारुत को, मन को,
खगराज को, वेग लजायो।

खगराज (गरुड़) का वेग मारुत (पवन) से अधिक, पर मन से कम होता है। अतः खगराज का उल्लेख मन के पूर्व होना चाहिए। अन्यथा जब मन के वेग को लज्जित कर दिया तो फिर खगराज के वेग का उल्लेख व्यर्थ है।

(२) राजन ! देहु तुरंग मोहि, अथवा देहु मतंग।

मतंग तुरंग की अपेक्षा अधिक मूल्यवान होता है, अतः पहले माँग मतंग की होनी चाहिए। जो तुरंग नही देगा वह मतंक कैसे देगा ?

११. पुनरुक्त

जब अर्थ की पुनरुक्ति हो (जब वही बात दूसरे शब्दों में फिर कही जाय)।

उदाहरण

(१) दृश्य बड़ा था रम्य, **मंजु, सुन्दर, मनमोहन।**

यहाँ **मंजु, सुन्दर** और **मनमोहन** आवश्यक है क्योंकि वे **रम्य** शब्द के अर्थ की ही पुनरुक्ति करते है।

(२) मुरछि परी, **सुधि नाहिं**।

मूर्च्छित होना और सुध (होश) नही रहना दोनों का एक ही अर्थ है; अतः यहाँ अर्थ की पुनरुक्ति है।

(३) कोमल कथन सभी को भाते, **अच्छे लगते मधुर वचन।**

१२. हतवृत्त (छन्दोभंग)

जब छन्द के नियमों का पालन न किया जाय। इसमें—

(१) या तो छन्द के लिए नियत मात्राओं या वर्णों की संख्या, या गणों की व्यवस्था नियम के अनुसार नहीं होती, या

(२) यति-भंग होता है, या

(३) गति-भंग होता है, या

(४) रस के अनुकूल छन्द का प्रयोग होता है।

उदाहरण

(१) तू बेटी ! जीवन में आयी,
सुख की झोली भर लायी ।
सच्चे सुख की झलक बावली !
तूने प्रथम दिखायी ।।

ये ताटंक छन्द के दो चरण हैं । ताटंक छन्द के प्रत्येक चरण में १६-१४ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं । यहाँ पहले चरण में तो मात्राएँ ठीक हैं पर दूसरे चरण में १६-१२ की यति से २८ मात्राएँ हैं । इस प्रकार दूसरे चरण में मात्राओं की संख्या नियम के अनुसार नहीं है ।

(२) प्यारे के पाँव मुख मुरलीनाद जैसा उन्हें पा ।

यह चरण मंदाक्रांता छन्द का है जिसमें ४-६-७ की यति से १७ वर्ण होते हैं । यहाँ चौथा वर्ण 'पाँ' है, जिससे पहली यति 'पाँव' शब्द के बीच में पड़ती है ।

छन्द में यति शब्द के बीच में नहीं पड़नी चाहिए—इससे यति-भंग दोष होता है । इस प्रकार इस उदाहरण में यति के नियम का पालन नहीं किया गया है ।

(३) दोउ समाज निमिराज रघु-
राज नहाये प्रात ।

ये दोहे के दो चरण हैं । यहाँ पहला चरण रघु पर समाप्त होता है जिससे रघुराज शब्द टूट जाता है, आधा पहले चरण के साथ पढ़ा जाता है और शेष आधा दूसरे चरण के साथ । यह भी छन्द के नियम के विरुद्ध है । इससे अर्थ को शीघ्र हृदयंगम करने में बाधा पहुँचती है ।

(४) राम-लच्छन चले वनवासा ।

यह चौपाई छन्द का चरण है जिसमें १६ मात्राएँ होती हैं । इस चरण में मात्राएँ तो पूरी हैं, पर यह चौपाई की भाँति नहीं पढ़ा जा सकता । इसमें चौपाई की गति नहीं है । इस प्रकार यहाँ गति-भंग दोष है ।

गति छन्द के प्रवाह या लय को कहते है। प्रत्येक छन्द की अपनी गति होती है जो उसे वह छन्द बनाती है। शृंगार छन्द में भी सोलह मात्राएँ होती हैं और चौपाई के चरण में भी। पर दोनों की गति अलग-अलग होती है। इसी प्रकार हरिगीतिका और सार दोनों के चरण २८-२८ मात्राओं के होते हैं पर दोनों की गति सर्वथा भिन्न होती है जिससे उनको तुरन्त पहचान लिया जाता है।

ऊपर के उदाहरण में लच्छन के 'न' को 'लच्छ' के साथ न पढ़कर 'चले' के साथ पढ़ा जाय तो गति ठीक हो जायगी—

राम-लच्छ नचले वनवासा।

(५) सीप-मुख मोती कदली-मुख कपूर है।

यह मनहरण कवित्त छन्द का पिछला आधा चरण है। मनहरण के चरण में १६-१५ की यति से ३१ वर्ण होते हैं। इस अर्ध चरण में १५ वर्ण हैं जो नियमानुकूल है। पर इसमें मनहरण की गति नहीं है; इसे मनहरण की तरह पढ़ने में कठिनाई होती है।

कई-एक छन्द कुछ रसों के लिए उपयुक्त और दूसरों के लिए अनुपयुक्त होते है। रस के अनुपयुक्त छन्द में उस रस का वर्णन करने में भी हतवृत्त दोष होता है। जैसे कड़खा या पंचचामर वीर रस के उपयुक्त छन्द है, वे शृंगार के लिए उपयुक्त नही। दोधक छन्द हास्य के लिए उपयुक्त है, उसमें शृंगार का वर्णन किया जाय तो प्रतिकूल प्रभाव होगा। इसी प्रकार बरवै छन्द वीर रस के लिए अनुपयुक्त है। मन्दाक्रान्ता करुण और वियोग शृंगार के विशेष उपयुक्त है।

(५) काव्य दोषों का पारस्परिक अन्तर

(१) च्युतसंस्कृति और अक्रम

(क) दोनों का सम्बन्ध व्याकरण-विरोध से है।

(ख) च्युतसंस्कृति में शब्द का रूप दूषित होता है; या तो शब्द का रूप अशुद्ध होता है या वाक्य में जो रूप होना चाहिए, वह नहीं होता। अक्रम में शब्दों का क्रम दूषित होता है; वाक्य में शब्द जहाँ होना चाहिए, वहाँ नहीं होता।

च्युतसंस्कृति—१. क्षण भर रहा **उजाला में**। (उजाले में)
२. खिले फूल सब **गिरा दिया है**।
(गिरा दिये है)

अक्रम—अ-मानुषी भूमि अ-बानरी करौ।

(२) अक्रम और दुष्क्रम

(क) दोनों में क्रम दूषित होता है।

(ख) अक्रम में क्रम व्याकरण की दृष्टि से दूषित होता है।
दुष्क्रम में क्रम तर्क या शास्त्र या लोक की दृष्टि से दूषित होता है।

अक्रम—अ-मानुषी भूमि अ-बानरी करौ।

दुष्क्रम—राजन ! देहु तुरंग मोहि, अथवा देहु मतंग।

(३) क्लिष्ट और अप्रतीत

(क) दोनों मे अर्थ ध्यान मे नहीं आता।

(ख) अप्रतीत में शब्द का प्रयोग शास्त्र-विशेष से पारिभाषिक अर्थ मे होता है, अतः जो उस शास्त्र का ज्ञाता नही होता, उसके ध्यान में अर्थ नहीं आता; पर क्लिष्ट में पारिभाषिक शब्द का प्रयोग नहीं होता. फिर भी अर्थ सहज ही ध्यान में नहीं आता, पर माथापच्ची करने पर वह प्रायः ध्यान में आ जाता है।

प्रतीत—तत्त्वज्ञान पाकर हुए **आशय** दलित समस्त।
(योगशास्त्र में आशय = वासना)

क्लिष्ट—**हेम-सुता-पति-वाहन** प्रिय ! तुम, इसमें रती न फेर।
(हेम-सुता-पति-वाहन = बैल, मूर्ख)

(४) ग्राम्य और अश्लील (व्रीड़ाश्लील और जुगुप्साश्लील)

(क) दोनों में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिनका प्रयोग शिष्ट-समाज में नहीं होता।

(ख) ग्राम्य में असंस्कृत जनों द्वारा प्रयुक्त शब्द या भाव का प्रयोग होता है, अश्लील में व्रीड़ा या जुगुप्सा या अमंगलव्यंजक शब्द या भाव का।

अश्लील शब्द सभ्य समाज में बोलने के योग्य नही होते, आपत्ति-योग्य माने जाते हैं। ग्राम्य शब्द आपत्ति-योग्य नहीं होते, फिर भी संस्कृत समाज में उनका प्रयोग नही किया जाता।

ग्राम्य—**मूँड़** पै मुकुट धरे सोहत गोपाल है।

अश्लील—रावण के दरबार में स्थित अंगद का **पाद**।

टिप्पणी—अश्लील में प्रायः शब्द या वाक्य द्वयर्थक होता है और दूसरा या अप्रस्तुत अर्थ ही व्रीड़ा या जुगुप्सा का व्यंजक होता है। ग्राम्य में शब्द या वाक्य द्वयर्थक नहीं होता।

(५) पुनरुक्त और अधिकपद

(क) दोनों में अनावश्यक शब्द होते है।

(ख) पुनरुक्त में अनावश्यक शब्द (या शब्दों) का अर्थ पहले के किसी शब्द (या शब्दों) में आ चुका होता है।

अधिकपद में अनावश्यक शब्द (या शब्दों) का अर्थ वाक्य के किसी अन्य शब्द (या शब्दों) में आया हुआ नही होता। अनावश्यक शब्द पुनरुक्ति के कारण नही किन्तु स्वतः अनावश्यक होता है।

पुनरुक्त—मूरछि परी, **सुधि नाहिं**।

अधिकपद—मन मेरा स्फटिका**कृति**-निर्मल रहे सदा गुरुदेव !

(आकृति शब्द अनावश्यक है)

(६) दोषों की सारणी

नाम	प्रकार	लक्षण	उदाहरण	कब गुण या निर्दोष*
१. च्युत-संस्कृति	पद वाक्य	व्याकरण-विरुद्ध शब्द या शब्दों का प्रयोग।	१. क्षण भर रहा **उजाला में**। २. खिले फूल सब **गिरा दिया है**।	कभी नहीं।
२. श्रुतिकटु	पद वाक्य	कानों को कटु लगने वाले शब्द या शब्दों का प्रयोग।	कब **कार्त्तार्थ्य** मिले मुझको।	वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स रस में। जब वक्ता उद्धत हो। जब प्रसंग उद्धत हो।
३. अप्रतीत	पद वाक्य	ऐसे शब्द या शब्दों का प्रयोग जो उस अर्थ में किसी विशेष शास्त्र में ही प्रयुक्त होते हों।	तत्त्वथान पाकर हुए **आशय** दलित समस्त।	१. जब वक्ता और श्रोता दोनों उस शास्त्र के ज्ञाता हों। ३. पात्र के स्वयं विचार में।
४. क्लिष्ट	पद वाक्य	ऐसे शब्द या शब्दों का प्रयोग जिनका अर्थ सहज ही ध्यान में न आये।	**मन्दिर-अरध** अवधि हरि बदि गये, **हरि-अहार** चलि जात।	कूट पहेली, शब्दचित्र आदि में।

***टिप्पणी**—अनुकरण में समस्त दोष निर्दोष होते हैं।

५. ग्राम्य	पद वाक्य	असंस्कृत शब्द या शब्दों का प्रयोग ।	मूंड़ पै मुकुट धरे सोहत गोपाल हैं ।	जब पात्र ग्राम्य हो । विदूषक की उक्ति में ।
	अर्थ	जब वाक्य का भाव असंस्कृत हो ।		
६. अश्लील	पद वाक्य	व्रीड़ा, जुगुप्सा या अमंगल की व्यंजना करने वाले शब्द या शब्दों का प्रयोग ।	(१) रावण के दरबार में स्थित अंगद का **पाद** । (२) **अभिप्रेत-पद** उसने पाया ।	१. व्रीड़ाश्लील कामशास्त्र और वैराग्य-कथा में । २. अमंगलाश्लील जब भावी अमंगल को सूचित करना हो ।
	अर्थ	जब वाक्य का भाव व्रीड़ा, जुगुप्सा या अमंगल का व्यंजक हो ।		३. जुगुप्साश्लील कभी नहीं ।
७. न्यूनपद	वाक्य	वाक्य में अर्थ-ज्ञान के लिए आवश्यक शब्द का प्रयोग न करना ।	पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु ।	भावावेश में ।

नाम	प्रकार	लक्षण	उदाहरण	कब गुण या निर्दोष
८. अधिक पद	वाक्य	वाक्य में अनावश्यक शब्द का प्रयोग।	मन मेरा स्फटिकाकृति-निर्मल रहे सदा गुरुदेव !	भावावेश में।
९. अक्रम	वाक्य	वाक्य में (शब्दों का) क्रम व्याकरण के विरुद्ध।	अ-मानुषी भूमि अ-वानरी करौ।	कभी नहीं।
१०. हृतवृत्त	वाक्य	जब छंद के नियमों का पालन न किया जाय।	प्यारे के पाँव मुख मुरली-नाद जैसा उन्हें पा।	कभी नहीं।
११. दुष्क्रम	अर्थ	वाक्य में (कथित वस्तुओं का) क्रम तर्क या शास्त्र या लोक के विरुद्ध।	मारुतनन्दन मारुत को; मन को, खगराज को वेग लजाओ।	
१२. पुनरुक्त	अर्थ	वाक्य में एक बार कहे हुए अर्थ को दूसरे शब्दों में फिर कहना।	दृश्य बड़ा था रम्य, मंजु सुन्दर मनमोहन।	

खण्ड ५
रस

(१) रस और रस के भेद

काव्य (कविता, कथा, उपन्यास, नाटक आदि) के पढ़ने, सुनने अथवा उसका अभिनय देखने से जो आनन्द होता है, उसे रस कहते हैं।

रस दस होते हैं। उनके नाम इस प्रकार है :

(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) वीर, (५) रौद्र, (६) भयानक, (७) बीभत्स, (८) अद्‌भुत, (९) शान्त, (१०) वत्सल।

शृंगार-हास्य-करुण - वीर - रौद्र - भयानकाः।
बीभत्साद्‌भुत-शान्ताश्च वत्सलश् च रसा दश।

(१) शृंगार रस का विषय प्रेम होता है। पुरुष के प्रति स्त्री के हृदय में या स्त्री के प्रति पुरुष के हृदय में जो प्रेम जागृत होता है उसी की व्यंजना शृंगार-काव्य में होती है, जैसे सीता और राम का प्रेम या गोपियों और कृष्ण का प्रेम। शृंगार दो प्रकार का होता है :

(क) संयोग—जब प्रेमी और प्रेमपात्र जुदा नहीं हों; और

(ख) वियोग या विप्रलम्भ—जब प्रेमपात्र एक-दूसरे से जुदा हों। इसमें विरह-व्याकुलता की व्यंजना होती है।

(२) हास्य रस का विषय हास (या हँसी) होता है। किसी विचित्र आकार या वेश या चेष्टा वाले लोगों को देखकर एवं उनकी विचित्र चेष्टाएँ, कथन आदि को देख-सुनकर हँसी जागृत होती है।

(३) करुण रस का विषय शोक होता है। किसी प्रिय व्यक्ति के मर जाने पर या किसी प्रिय वस्तु के नष्ट हो जाने पर या किसी अनिष्ट के आने पर शोक जागृत होता है।

(४) वीर रस का विषय उत्साह या जोश होता है। लड़ाई को देखकर, मारू बाजा एवं चारणों के वीर-गीत सुनकर, शत्रु को सामने पाकर, लड़ने का

उत्साह होता है। इसी प्रकार कभी किसी दीन-हीन शोकार्त प्राणी को देखकर दया होती है और उसका कष्ट दूर करने का उत्साह होता है, कभी याचकों को देखकर दान देने का उत्साह होता है और कभी कष्ट सहकर और प्राण देकर भी धर्म-पालन करने का उत्साह होता है। इस तरह से उत्साह अनेक प्रकार का होता है।

(५) रौद्र का विषय क्रोध है। अपने अपकार करने वाले या शत्रु आदि को सामने देखकर क्रोध की जागृति होती है।

(६) भयानक का विषय भय है। सिंह इत्यादि भयंकर जीव, भयंकर प्राकृतिक दृश्य, बलवान शत्रु आदि को देख-सुनकर भय जागृत होता है।

(७) बीभत्स का विषय जुगुप्सा या ग्लानि है। रक्त, मांस-मज्जा, दुर्गन्ध आदि वस्तुओं से जुगुप्सा जागृत होती है।

(८) अद्‌भुत रस का विषय आश्चर्य या विस्मय होता है। अलौकिक या अदृष्टपूर्व वस्तु को देखकर विस्मय का भाव जागृत होता है।

(९) शान्त का विषय निर्वेद अथवा वैराग्य होता है। संसार की अनित्यता, दुःखमयता आदि देखकर सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य जागृत होता है। शान्त रस की कविता में ऐसे वैराग्य की व्यंजना होती है। भक्ति की रचना भी प्रायः शान्त रस में ही सम्मिलित की जाती है।

(१०) वत्सल रस का विषय पुत्र, पुत्री, अनुज, शिष्य आदि के प्रति प्रेम होता है, जिसे स्नेह कहते हैं। हिन्दी में सूरदास वत्सल रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

(२) रस-सामग्री

१. **स्थायी भाव**—प्रत्येक रस में एक प्रधान मनोविकार होता है जिसके जागृत होकर परिपक्व होने से रस का अनुभव होता है। यह रसानुभव-काल में आरम्भ से अन्त तक बना रहता है। इसको स्थायी भाव कहते हैं। रसों के स्थायी भावों के नाम ये हैं :

रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शम (शान्ति) या निर्वेद (वैराग्य) और स्नेह।

२. **संचारी (या व्यभिचारी) भाव**—प्रधान मनोविकार के साथ छोटे-छोटे कई और मनोविकार उत्पन्न होते हैं जो प्रधान मनोविकार के परिपाक में, उसकी अनुभूति को तीव्र बनाने में, सहायक होते हैं और रस के अनुभव में सहायता करते है। ये स्थायी भावों की भाँति समस्त रसानुभव-काल में स्थायी बने नहीं रहते, किन्तु जागृत हो-होकर (एवं सहायता का कार्य पूरा कर-करके), जल-तरंगों की भाँति, विलीन हो जाते हैं। इनकी संख्या बहुत बड़ी है, पर साहित्य-शास्त्र में तैंतीस प्रमुख भावों को चुन लिया गया है। अतः संचारी भावों की संख्या तैंतीस मानी जाती है :

गर्व ग्लानि, मति मोह मरण मद, श्रम शंका, स्वप्न स्मृति हर्ष।
धृति, निद्रा, निर्वेद असूया अपस्मार अवहित्थ अमर्ष॥
जाड्य, चपलता चिंता, व्रीड़ा व्याधि विवोध वितर्क विषाद।
दैन्य, त्रास, आवेग उग्रता आलस उत्सुकता उन्माद॥
पाँच व, तीन उ, चार अ-म, दो-दो ग-च-श-स-आ न।
एक-एक ज-त-द-ध-ह फिर, यों तैंतीस बखान॥

३. **विभाव**—प्रधान मनोविकार के जागृत या उद्दीप्त होने के कारणों को विभाव कहते हैं। इसके दो भेद हैं :

(१) **आलम्बन**—जिसके आधार पर, अर्थात् जिसे देख-सुनकर, मनोविकार जागृत हो। जैसे, शृंगार में प्रेम-पात्र स्त्री या पुरुष; जिसे देखकर प्रेम जागृत हो।

(२) **उद्दीपन**—जो जागृत हुए मनोविकार को प्रदीप्त या उत्तेजित करे अर्थात् बढ़ावे। जैसे—वीर-रस में मारू बाजा, चारणों का प्रोत्साहन आदि।

४. **अनुभाव**—मनोविकार जागृत होने पर बाह्य चेष्टाओं द्वारा प्रकट होता है; ऐसी शारीरिक चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं। जैसे—मुख का खिलना, मुस्कराना, रोना, निःश्वास लेना, भुजा फड़कना, आँखें लाल होना, होठ चबाना, काँपना, रोमांच होना, नाक-भौं सिकोड़ना, स्तम्भित हो जाना, एकटक देखना, पसीना आना, आवाज काँपना, मुख पीला पड़ जाना, जम्हाई आना, शरीर की सुधि न रहना इत्यादि।

अनुभावों के एक भेद को सात्त्विक भाव कहते हैं। इनकी संख्या आठ है :

स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, कंप, वैवर्ण्य ,
अश्रु, प्रलय, ये आठ है सात्त्विक भाव सुवर्ण्य ।।

१. स्तम्भ (अंगों का जड़ हो जाना); २. स्वेद (पसीना आ जाना); ३. रोमांच (रोम खड़े हो जाना); ४. स्वर-भंग (आवाज न निकलना या टूटना); ५. वेपथु या कंप (काँपना(; ६. वैवर्ण्य (रंग उड़ जाना); ७. अश्रु (आँसू बहने लगना); और ८. प्रलय (अचेत होना)।

५. आश्रय—वह व्यक्ति जिसके हृदय में कोई भाव जागृत हो।

टिप्पणी—आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव होती है और आलम्बन की चेष्टाएँ उद्दीपन। हाव उद्दीपनों के अन्तर्गत होते हैं।

प्रत्येक रस के स्थायी भाव, संचारा भाव, विभाव और अनुभाव आगे दिये जाते हैं :

सं०	रस का नाम	स्थायी भाव	आलम्बन विभाव	उद्दीपन विभाव	अनुभाव	प्रमुख संचारी भाव
१.	शृंगार	प्रेम (रति)	प्रेम-पात्र स्त्री या पुरुष, अर्थात् नायक या नायिका ।	सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, वसंत, संगीत, प्रिय की चेष्टाएँ ।	मुख खिलना, एकटक देखना, मधुर आलाप, विनोद । (संयोग) रुदन, विलाप, प्रलाप, निःश्वास, जड़ता । (वियोग)	प्रायः सभी ।
२.	हास्य	हास (हँसी)	जिसको देख-सुन कर हँसी आवे, जैसे विदूषक ।	आलम्बन की विचित्र चेष्टाएँ, विचित्र वेश या कथन या कोई अन्य विचित्रता आदि ।	मुस्कराना, हँसना, लोटपोट हो जाना, आँसू आ जाना ।	हर्ष, चपलता, आलस्य ।
३.	करुण	शोक	(१) प्रिय व्यक्ति जो मर गया हो या दीन दशा में हो । (२) प्रिय वस्तु जो नाश हो गयी हो ।	आलंबन की दीन दशा, दाह-क्रिया, आलम्बन के गुणों का स्मरण, तत्सम्बन्धी वस्तुओं का दर्शन आदि ।	रुदन, विलाप-प्रलाप, पृथ्वी पर लोटना, छाती पीटना, निःश्वास भरना ।	मोह, विषाद, दैन्य, जड़ता, उन्माद, व्याधि, ग्लानि, निर्वेद, चिंता ।

सं०	रस का नाम	स्थायी भाव	आलम्बन विभाव	उद्दीपन विभाव	अणुभाव	प्रमुख संचारी भाव
४.	वीर	उत्साह	जिस व्यक्ति को देखकर लड़ने का उत्साह हो, या दान देने या सहायता करने का उत्साह हो, जैसे शत्रु या दीन या याचक ।	शत्रु की ललकार, मारूबाजा, चारणों के गीत; दीन का दुःख या दारिद्रच; याचक-कृत प्रशंसा आदि ।	भुजा फड़कना, मुख खिलना, सेना का उत्साह बढ़ाना, आक्रमण करना, लड़ना आदि ।	गर्व, हर्ष, धृति, उग्रता ।
५.	रौद्र	क्रोध	जिसको देखकर क्रोध आवे, जैसे शत्रु या अपकारक ।	अपकारक या शत्रु की चेष्टाएँ, अनुचित कथन आदि ।	नेत्र लाल होना, भृकुटी चढ़ाना, होंठ चबाना, दाँत पीसना, बकना, प्रहार करना आदि ।	गर्व, चपलता, उग्रता, अमर्ष ।
६.	भयानक	भय	जिसको देखकर भय लगे ।	आलम्बन की भयंकरता, उसकी भयंकरता को बढ़ाने वाली वस्तुएँ आदि ।	वैवर्ण्य, रोमांच, कंप, स्वरभंग, स्तम्भ, स्वेद गिरना, भागना घिग्घी बँधना, मूर्च्छित होना ।	त्रास, आवेग, दैन्य, शंका, चिन्ता, अपस्मार ।

७.	बीभत्स	जुगुप्सा	जिसको देखकर जुगुप्सा हो, जैसे—श्मशान, मांस, रुधिर, फूहड़ आदि ।	दुर्गन्ध, कीड़े बिलबिलाना, मक्खियों का भिनभिनाना आदि ।	नाक-भौं सिकोड़ना, मुँह बिगाड़ना, रोमांच ।	आवेग, मोह, व्याधि ।
८.	अद्भुत	विस्मय	आश्चर्यकारक या अलौकिक व्यक्ति या वस्तु या दृश्य या घटना ।	आलंबन के अद्भुत गुण-कर्म आदि ।	एकटक देखना, स्तम्भित होना आदि ।	वितर्क, आवेग, जड़ता, मोह, हर्ष ।
९.	शान्त	शम (शान्ति) या निर्वेद (वैराग्य)	वैराग्य या शान्तिजनक वस्तु या परिस्थिति, आत्मज्ञान ।	तीर्थयात्रा, सत्संगति, पवित्र आश्रम आदि ।	रोमांच, प्रेमाश्रु गिरना आदि ।	धृति, मति, हर्ष, चिन्ता ।
१०.	वत्सल	वात्सल्य या स्नेह	सन्तान, अनुज, शिष्य ।	आलंबन की चेष्टाएँ, बालक्रीड़ाएँ आदि ।	मुख प्रसन्न होना, चूमना, बलैयाँ लेना आदि ।	हर्ष आदि ।

(३) रस-विरोध

१. रसों में कुछ परस्पर मित्र होते हैं, कुछ परस्पर विरोधी। जैसे :

रस	मित्र रस	विरोधी रस
शृंगार	हास्य, वीर, अद्‌भुत	बीभत्स, करुण, शान्त (रौद्र, वीर, भयानक)
हास्य	शृंगार	करुण (भयानक)
करुण	शृंगार	हास्य, शृंगार
वीर	शृंगार, अद्‌भुत, रौद्र	भयानक (शान्त)
रौद्र	अद्‌भुत, रौद्र	अद्‌भुत, शान्त (हास्य, शृंगार, भयानक)
भयानक	बीभत्स	वीर (शृंगार, रौद्र, हास्य, शान्त)
बीभत्स	भयानक	शृंगार
अद्‌भुत	शृंगार	रौद्र
शान्त	शृंगार	रौद्र, शृंगार (हास्य, वीर, भयानक)

२. विरोधी रसों का एक साथ वर्णन नहीं होना चाहिए।

३. रस-विरोध तीन प्रकार का होता है :

(१) **आश्रय-विरोध**—एक ही आश्रय में होने पर विरोध होता है, अन्यथा नहीं। जैसे—वीर और भयानक का अथवा रौद्र और शान्त का।

(२) **आलम्बन-विरोध**—एक ही आलम्बन होने पर विरोध होता है, अन्यथा नहीं। जैसे—शृंगार और वीर का।

(३) **निरन्तर-विरोध**—ठीक एक के बाद दूसरे के आने पर विरोध होता है, अन्यथा नहीं। जैसे—शृंगार और बीभत्स का।

४. **रस-विरोध का परिहार**—

(१) **आश्रय-विरोध**—आश्रय विभिन्न होने से मिट जाता है। जैसे—वीर नायक में और भयानक प्रतिनायक में।

(२) **आलम्बन-विरोध**—आलम्बन विभिन्न होने से मिट जाता है। जैसे—शृंगार नायिका के प्रति और वीर शत्रु-सेना के प्रति।

(३) **निरन्तर-विरोध**—विरोधी रसों के बीच में अविरोधी रस को रख देने से मिट जाता है। जैसे—शृंगार और बीभत्स के बीच में वीर, अथवा शान्त और शृंगार के बीच में अद्‌भुत, रख देने से।

(४) निम्नलिखित अवस्थाओं में भी रस-विरोध नहीं रहता :

(क) जब दोनों में से एक प्रधान हो और दूसरा उसका अंग या सहायक बनकर आये।

(ख) जब दोनों विरोधी रस किसी तीसरे रस के अंग हों।

(४) सात्त्विक भावों के उदाहरण

१. **स्तम्भ** (स्तम्भ की भाँति जड़ हो जाना)—

(१) जाइ समीप राम-छबि देखी।
भइ जनु कुँवरि चित्र-अवरेखी॥

(२) कान्ह को देखति देवता-सी।
बूखभान-लली न हली न चली॥

२. **स्वेद** (पसीना आना)—

(१) झलकीं भरि लाल कनी **जल की**।
पुट सूखि गये मधुराधर वै॥

(२) **तन पसेउ** कदली जिमि काँपी।
कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥

३. **रोमांच** (रोम खड़े हो जाना)—

(१) पुनि-पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू।
पुलक गात, उर अधिक उछाहू॥

(२) गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं।
मुदित भये, पुनि-पुनि **पुलकाहीं**॥

४. **स्वर-भंग** (गला सूखना, आवाज न निकलना, स्पष्ट आवाज न निकलना)—

(१) सीता और न बोल सकी।
गद्‌गद कंठ न खोल सकी॥

(२) कंठ सूख, मुख आव न बानी ।
जनु पाठीन दीन बिनु पानी ॥

५. **कंप** (काँपना)—

(१) काँपि उठीं वे मृदु - देही ।
धरती घूमी या वे ही ? ॥

(२) नयन सजल, **तन थर-थर काँपी** ।
माँजहि खाइ मीन जनु मापी ॥

६. **वैवर्ण्य** (रंग उड़ जाना, पीला पड़ना)—

(१) मुख-कान्ति पड़ी पीली-पीली ।
आँखें अशान्त नीली-नीली ॥

(२) बि-बरन भयेउ निपट नरपालु ।
दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालु ॥

७. **अश्रु** (आँसू गिरना)—

(१) मोती जैसे बड़े - बड़े ।
टप - टप आँसू टपक पड़े ॥

(२) बन्धु समेत जनक तब आये ।
प्रेम उमगि लोचन जल छाये ॥

(३) रामहि चितइ रहेउ नरनाहू ।
चला बिलोचन बारि-प्रवाहू ॥

(४) बीच बास करि जमुनहि आये ।
निरखि नीर लोचन जल छाये ॥

८. **प्रलय** (मूर्च्छित होना)—

(१) इधर उर्मिला मुग्ध निरी ।
कहकर 'हाय' धड़ाम गिरी ॥

(२) अस कहि मुरुछि परउ महि राऊ ।
राम-लखन-सिय आनि दिखाहू ॥

(५) संचारी भावों के उदाहरण

१. **हर्ष** (अभीष्ट-सिद्धि आदि से उत्पन्न मन की प्रसन्नता)—

हँसने लगे तब हरि अहा ! पूर्णेन्दु-सा मुख खिल गया ।

२. **गर्व** (अपनी श्रेष्ठता की भावना के कारण दूसरे की अवज्ञा करना)—

(१) हे सारथे ! हैं द्रोण क्या, आवें स्वयं देवेन्द्र भी ।
वे भी न जीतेंगे समर में आज क्या मुझसे कभी ॥

(२) गोरी गुमानिनि ग्वारि गंवारि ।
गिनै नहिं रूप रती को रती को ।

३. **उत्सुकता** (उत्कंठा, कार्य-सिद्धि में विलंब का असह्य होना)—

पपिहा ज्यों पिउ-पिउ करौ, कब रे मिलहुगे राम !

४. **चपलता** (स्थिर होकर नहीं बैठ सकना)—

उत तें इत, इत तें उतहिं, छिनक न कहुँ ठहराति ।
जक न परति, चकरी भयी, फिर आवति, फिरि जाति ।

५. **मद** (नशा, मद्यप की-सी चेष्टाएँ करना)—

झुकति हँसति हँसि-हँसि झुकति झुकि-झुकि हँसि-हँसि देति ।

६. **उन्माद** (पागलपन, पागलों की-सी चेष्टाएँ करना)—

छिन रोवति, छिन हँसि उठति, छिन बोलति, छिन मौन ।

७. **व्रीड़ा** (लज्जा होना, लज्जित होना)—

(१) तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी ।
दुहुँ सँकोच सकुचति बर-बरनी ॥

(२) अंगद-बचन सुनत सकुचाना ।
रहा बालि बंदर, मैं जाना ॥

८. **अवहित्थ** (हर्ष, भय आदि उत्पन्न भाव को लज्जा आदि के कारण छिपाने की चेष्टा करना)—

(१) सुनि नारद की बात, तात निकट मुख नमन करि ।
उमा कमल के पात कर उठाइ गिनने लगी ॥

(२) हिम-गिरि गुहा विपच्छ भे कंपित सुनि तब नाम ।
कहत, सीत अति है तऊ अति सुन्दर यह ठाम ।।

९. **स्वप्न** (सपना देखना)—

लागि गयीं पलकैं पल सों, पल लागत ही पल में पिव आये

१०. **निद्रा** (नींद आ जाना)—

१. पिय-आवन सुनि मुद्रित-मन जागि गँवायी रात ।
पलक लगी, न जगी अली पिय आये परभात ।।

२. जागत रैनि भयेउ भिनुसारा ।
भयी अलस सोवत बेकरारा ।।

११. **विबोध** (जाग उठना)—

पहर पाछिली पीव कहँ नींद मिलायो आनि ।
मिल न सकी, गाज्यो जलद, उघरि गयी आँखियानि ।।

१२. **श्रम** (थकावट)—

पुर तें निकसी रघुवीर-वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पटु सूखि गये मधुराधर वै ।।

१३. **आलस्य** (काम करने की इच्छा न होना)—

अंगरात, जमुहात, नहिं उठत बनै परभात ।

१४. **व्याधि** (रुग्णावस्था, विरह-दाह)—

विरह न बोल आव मुख ताई ।
मरि-मरि बोल जीउ बरियाई ।।
दवै विरह, रारुन, हिय काँपा ।
खोलि न जाय विरह-दुख झाँपा ।।
होइ हनुमन्त पैठ हिय कोई ।
लंका-दाह लाग करै सोई ।।

१५. **अपस्मार** (मिरगी के रोग की-सी अवस्था)—

होइ अचेत परी धरनी, पटकै कर, फेन तजै मुख तें ।

१६. **ग्लानि** (शारीरिक अशक्ति)—

पीली पड़ निर्बल कोमल कृश देह-लता कुम्हलायी ।
विवसना लाज में लिपटी, साँसों में शून्य समायी ।।

१७. **जड़ता** (हाथ-पैर और मुख आदि कर्मेन्द्रियों का अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाना)—

(१) जाइ समीप राम-छवि देखी। भइ जनु कुवरि चित्र-अनरेखी।

(२) कान्ह को देखति देवता-सी वृखभान-लली न हली, न चली॥

१८. **मोह** (आँख-कान आदि ज्ञानेन्द्रियों का अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाना)—

विरह-महानल विकल हिय पिय-पिय कहि बिलखाहि।
आये हू पिय के निकट तिय पहिचानति नाँहि॥

१९. **मरण** (मृत्यु या मृत्यु के पूर्व की अवस्था)—

(१) परा माति गोरख कर चेला।
जिउ तन छाँड़ि सरग कहँ खेला।
किगरी लिये जु हुत वैरागी।
मरतिहु बार सोइ धुनि लागी॥

(२) खाकर भी बारबार झटके।
क्यों प्राण अभी तक हैं अटके?
हे जीव! चलो, अब दिन बीते।
हा राम! राम! लक्ष्मण! सीते!

२०. **दैन्य** (अपने को हीन समझना)—

१. माधवजू! मो सम मंद न कोऊ।
यद्यपि मीन-पतंग हीन अति, मोहि न पूजहिं सोऊ॥

२१. **निर्वेद** (अपने प्रति और संसार की वस्तुओं के प्रति विरक्ति)—

१. सोच सुमंत्र विकल दुख दीना।
धिग जीवन रघुवीर-विहीना।
भये अजस-अघ-भाजन प्राना।
कवन हेतु नहिं करत पयाना॥

२२. **शंका** (न जाने क्या अनिष्ट होगा ऐसी चित्तवृत्ति)—

हे मित्र! मेरा मन न जाने हो रहा क्यों व्यस्त है?
इस समय पल-पल में मुझे अपशकुन करता त्रस्त है॥

२३. **त्रास** (आकस्मिक कारण से चौंककर डर जाना)—

आवत मुकुट देखि कपि भागे ।
दिन ही लूक परन विधि ! लागे ।

२४. **आवेग** (घबड़ाहट)—

पाँयन की सुधि भूलि गयी, अकुलाय महावर आँखिन दीनों ।

२५. **विषाद** (काम बिगड़ जाने, उपाय न दीखने आदि से उत्पन्न अनुताप)—

जो जहँ सुनइ, धुनइ सिर सोई ।
बड़ विषाद, नहिं धीरज होई ॥

२६. **चिन्ता**—

माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन ।
तनु धरि सोच लाग जनु सोचन ॥

२७. **स्मृति** (पहले अनुभव की हुई वस्तुओं की याद आना)—

१. बीच बास करि जमुनहि आये ।
निरखि नीर लोचन जल छाये ॥

२. जो पाती हूँ कुँवर-वर के जोग मै भोग प्यारा ।
तो होती हैं हृदय-तल में सैकड़ों वेदनाएँ ॥

३. आले में रक्खी वंशी को देख हृदय रो उठता है ।

२८. **वितर्क** (तर्क-वितर्क करना)—

१. लंका निसिचर-निकर-निवासा ।
इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा ॥

२. रहौ लजाइ त पिउ चलैं, कहौं त कह मोहि ढीठ ।
ठाढ़ि तेवानि, कि का करौ, दूभर दुओ बईठ ॥

२९. **धृति** (धीरज होना, मानसिक उपद्रवों की शान्ति)—

अवनिद अकनि राम पगु धारे ।
धरि धीरज तब नयन उघारे ॥

३०. **मति** (सन्देह के बाद विचार द्वारा निश्चित निर्णय पर पहुँचना)—

अच्युत ! तव उपदेश सों मोह गयो सब खोइ ।
भाग्यो संसय, अब हरे ! करिहौ कहिहौ सोइ ॥

३१. **अमर्ष** (दूसरे के द्वारा की हुई अवज्ञा से उत्पन्न असहनशीलता)—

माखे लखन, कुटिल भयी भौहें ।
रद-पट फरकत, नयन रिसौंहैं ॥

३२. **असूया** (दूसरे के उत्कर्ष को देख-सुनकर उद्धततापूर्वक उसकी निन्दा करना)—

कहँ कठोर हर को धनुख, कहँ यह प्राकृत बाल ।
या को भंजन तो कियो, सरब-सँघारी काल ॥

३३. **उग्रता** (अपराध आदि के कारण उत्पन्न चण्डता)—

१. अति रिस बोलेउ बचन कठोरा ।
कहु जड़ जनक ! धनुख केहि तोरा ॥
वेगि दिखाउ मूढ़ ! न तु आजू ।
उलटौं महि जहँ लगि तव राजू ॥

२ मातु-पितहिं जनि सोच-बस करसि महीप-किसोर ।
गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥

३. सुनत दसानन उठा रिसाई ।
खल ! तोहि निकट मृत्यु अब आयी ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन-प्रहारा ।
अनुज गहे पद बारहि-बारा ॥

कुछ और संचारी भाव

१. **उदासीनता** (तटस्थता)—

१. कोउ नृप होइ हमहि का हानी ।
चेरि छाड़ि अब होब न रानी ॥

२. संदेसो देवकी सों कहियो ।

हौ तो धाय तिहारे सूत की, मया करत ही रहियो ॥

२. **स्पर्द्धा**—

मैया ! कबहिं बढ़ैगी चोटी ।

तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी-मोटी ॥

३. **क्षोभ**—

खेलत में को काको गुसैयाँ ?

हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ ।

रूहठि करै तासो को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ ॥

४. **झुंझलाहट**—

तब तू मारिबोई करति ।

रिसनि आगे कहि जु आवति, अब लै भाँड़े भरति !

५. **आत्मग्लानि**—

मैं धिक-धिक अघ-उदधि अभागी ।

सब उतपात भयेउ जेहि लागी ॥

कुल-कंलक करि सृजेउ बिधाता ।

सांइ-द्रोह मोहि दीन्ह कु-माता ॥

६. **आत्मत्याग**—

यह तनु जारौं, छारि कै कहों कि पवन उड़ाव ।

मकु तेहि मारग होइ परै, कन्त धरै जहँ पाँव ॥

टिप्पणी—एक स्थायी भाव भी दूसरे स्थायी भाव का संचारी हो सकता है।

(६) रसों के उदाहरण

(१) शृंगार

संयोग शृंगार—

(१) श्रीराम को देखकर सीता के प्रेम का वर्णन—

देखन मिस मृग-बिहँग-तरु फिरति बहोरि-बहोरि।
निरख-निरखि रघुबीर-छबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि॥

देखि रूप लोचन ललचाने। हरखे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति-छबि देखी। पलकन हू परहरी निमेखी॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन-मग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक-कपाट सयानी॥

—रामचरितमानस

रस—संयोग शृंगार। स्थायी भाव—रति। आश्रय—सीता। आलंबन—राम। उद्दीपन—वाटिका आदि। अनुभाव—स्तम्भ, देह का भारी होना, नयनों का थकित होना, एकटक देखना। संचारी भाव—हर्ष जड़ता।

(२) राघव बोले देख जानकी के आनन को—

'स्वर्गगा का कमल मिला कैसे कानन को?'
'नील मधुप को देख वहीं उस कंज-कली ने
स्वयं आगमन किया'—कहा यह जनक-लली ने॥ —प्रसाद

(३) मिले कपोल कपोल सों अधिक निकटता पाय॥
किय आलिंगन पुलक भर मेलि भुजा भुज मांय॥
मन्द-मन्द सुर सों विविध करत बिना क्रम बात॥
बातें वे बीती नहीं, गयी बीत ही रात॥ —भवभूति

वियोग शृंगार—

(१) भूखन-बसन बिलोकत सिय के।
प्रेम-बिबस मन, कम्प पुलक तन,
नीरज-नैन नीर भरे पिय के।

सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत,
मील-सनेह-सुगुन-गन तिय के ॥ —तुलसी

रस—वियोग शृंगार । स्थायी भाव—रति । आश्रय—राम । आलबन—सीता । उद्दीपन—सीता के वस्त्राभूषणों को देखना । अनुभाव—कंप, रोमांच, अश्रु । संचारी भाव—स्मृति, संकोच, उमंग ।

(२) बैठि अटा सर औधि बिसूरति
पाय सँदेस न 'श्रीपति' पी के ।
देखत छाती फटै निपटै, उछटै
जब बिज्जु-छटा छबि नीके ॥
कोकिल कूकैं, लगैं तक लूकैं,
उठै हिय हूकैं बियोगिनि ती के ।
वारि के बाहक, देह के दाहक
आये बलाहक गाहक जी के ॥

रस—वियोग शृंगार । स्थायी भाव—रति । आश्रय—नायिका । आलंबन—नायक । उद्दीपन—वर्षाकाल, बादलों का उमड़ना, बिजली का चमकना, कोयलों का कूकना । संचारी भाव—चिन्ता, व्याधि ।

(३) अति मलीन बृखभानु-कुमारी
अध-मुख रहित, उरध नहिं चितवति,
ज्यों गथ हारे थकित जुआरी ।
छूटे चिकुर, बदन कुम्हिलानो,
ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ॥ —सूरदास

स्थायी भाव—रति । आश्रय—राधा । आलंबन—कृष्ण । अनुभाव—अधोमुख रहना, अन्यत्र नहीं देखना, मुख का कुम्हला जाना, बालों का बिखरना । संचारी भाव—ग्लानि, चिन्ता, दैन्य ।

(२) हास्य रस

(१) सखि ! बात सुनों इक मोहन की,
निकसी मटुकी सिर रीती ले कै ।
पुनि बाँधि लया सु नये नतना
रु कहूँ-कहुँ बुन्द करीं छल कै ॥

निकसी उहि गैल हुते जहाँ मोहन,
लीनी उतारि तबै चल क।
पतुकी धरि स्याय खिसाय रहे,
उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै ॥ —केशवदास

रस—हास्य। स्थायी भाव—हास। आश्रय—गोपी। आलंबन—कृष्ण। उद्दीपन—कृष्ण का खिसियाना। अनुभाव—मुख पर आँचल करना, हँसना। संचारी भाव—चपलता, हर्ष (आक्षिप्त या अध्याहृत)।

(२) तेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप-अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैठे महेस-गन दोऊ। विप्र-बेस गति लखइ न कोऊ ॥
सखी संग दै कुँवर तब चलि जनु राज-मराल।
देखत फिरइ महीप सब कर-सरोज जय-माल ॥
जेहि दिसि नारद बैठे फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली ॥
पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर-गन मुसकाहीं ॥
—रामचरितमानस

रस—हास्य। स्थायी भाव—हास। आश्रय—हर-गण। आलंबन—नारद। उद्दीपन—नारद का बन्दर का रूप, उनका फूलकर बैठना, उनका बार-बार उकसना। अनुभाव—मुसकराना। संचारी भाव—चपलता आदि (ऊपर से आक्षेप करना होगा)।

(३) करुण रस

(१) अभिमन्यु की मृत्यु पर उत्तरा का विलाप—

प्रिय मृत्यु का अप्रिय महा संवाद पाकर विष-भरा।
चित्रस्थ-सी, निर्जीव-सी, हो रह गयी हत उत्तरा ॥
संज्ञा-रहित तत्काल ही वह फिर धरा पर गिर पड़ी।
उस समय मूर्छा भी अहो ! हितकर हुई उसको बड़ी ॥
फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई।
कुररी-सदृश सकरुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई ॥

बहुविधि विलाप-प्रलाप वह करने लगी उस शोक में।
निज प्रिय-वियोग समान दुख होता न कोई लोक में ॥

—जयद्रथ-वध

रस—करुण। स्थायी भाव—शोक। आश्रय—उत्तरा। आलंबन—अभिमन्यु की मृत्यु। अनुभाव—स्तंभ, प्रलय (मूर्छा), सिर और छाती पीटना, अश्रु, रुदन, प्रलाप। संचारी—जड़ता, मोह, दीनता।

(२) सुदामा की दीन दशा देखकर श्रीकृष्ण का व्याकुल होना—

पाँय बेहाल बिवाइन मों भये, कंटक-जाल लगे पुनि जोये।
हाय! महादुख पाये सखा! तुम आये इतै न कितै दिन खोये।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करि कै करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैननि के जल मों पग धोये ॥

— नरोत्तमदास

रस—करुण। स्थायी भाव—शोक। आश्रय—कृष्ण। आलंबन—सुदामा। उद्दीपन—सुदामा की दीन दशा, बिवाई और काँटों से भरे पैर। अनुभाव—अश्रु, सुदामा के प्रति उपालंभ भरा कथन। संचारी भाव—विषाद, पश्चात्ताप।

(३) सुनि मृदु बचन भूप-हिय सोकू।
ससि कर छअत विकल जिमि कोकू ॥
गयेउ सहमि, नहिं कहि कछु आवा।
जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयेउ निपट महिपालू।
दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ, मूँदि दोउ लोचन।
तनु धरि लाग सोचु जनु सोचन ॥

—रामचरितमानस

(१) स्थायी भाव—शोक। (२) आश्रय—दशरथ। (३) आलंबन—राम। (४) उद्दीपन—कैकेयी के वचन। (५) अनुभाव—स्वर भंग, वैवर्ण्य, माथे पर हाथ रखना, नेत्र मूँदना। (६) संचारी भाव—विकलता, सहमना, चिन्ता।

(४) वीर रस

(१) जय के दृढ़-विश्वास-युक्त थे दीप्तिमान जिनके मुख-मंडल।
पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर रजकण कर देने को चंचल॥
फड़क रहे थे अति प्रचण्ड भुज-दण्ड शत्रु-मर्दन को विह्वल।
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर ऐसे युवक चले दल-के-दल॥

रस—युद्ध-वीर। स्थायी भाव—उत्साह। आश्रय—युवक। आलंबन—शत्रु। अनुभाव—मुख का दीप्तिमय होना, भुजाओं का फड़कना। संचारी भाव—हर्ष, चपलता, आत्मविश्वास।

(२) कालिय नाग को देखकर श्रीकृष्ण का जोश में भरना—

स्व-जाति की देख अतीव दुर्दशा
विगर्हणा देख मनुष्य-मात्र की।
विखार के प्राणि-समूह-कष्ट को
हुए समुत्तेजित वीर-केसरी॥
हितैषणा से निज जन्म-भूमि की
अपार आवेश व्रजेश को हुआ।
बनी महा बंक गठी हुई भवें,
नितान्त विस्फारित नेत्र हो गये॥ —**प्रिय प्रवास**

रस—वीर। स्थायी भाव—उत्साह। आश्रय—श्रीकृष्ण। आलंबन—कालिय नाग। उद्दीपन—स्वजाति की दुर्दशा, मनुष्य-मात्र की विगर्हणा, जन्म-भूमि की हितैषणा। अनुभाव—भौंहों का वंकिम होना, नेत्रों का विस्फारित होना। संचारी भाव—हर्ष, चपलता।

(३) मैं सत्य कहता हूँ सखे! सुकुमार मत जानो मुझे।
यमराज से भी युद्ध में प्रस्तुत सदा जानो मुझे॥
हे सारथे? हैं द्रोण क्या?, आवें स्वयं देवेन्द्र भी।
वे भी न जीतेंगे समर में आज क्या मुझसे कभी॥ —**जयद्रथ-वध**

रस—युद्ध-वीर। स्थायी भाव—उत्साह। आश्रय—अभिमन्यु। आलंबन—द्रोण आदि कौरव-पक्ष के वीर। अनुभाव—अभिमन्यु का वचन। संचारी भाव—गर्व, हर्ष, उत्सुकता।

(५) रौद्र रस

(१) श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।
सब शोक अपना भूलकर करतल-युगल मलने लगे॥
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े।
करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठकर खड़े॥
उस काल मारे क्रोध के तनु काँपने उनका लगा।
मानो हवा के जोर से सोता हुआ सागर जगा॥
मुख बाल-रवि सम लाल होकर ज्वाल-सा बोधित हुआ।
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ॥

—जयद्रथ-वध

रस—रौद्र। स्थायी भाव—क्रोध। आश्रय—अर्जुन। आलंबन—कौरव। उद्दीपन—अभिमन्यु का वध। अनुभाव—हाथ मलना, घोषणा करना, मुख लाल होना, तन काँपना। संचारी भाव—उग्रता आदि।

(२) माखे लखन, कुटिल भयी भौंहैं।
रद-पट फरकत नैन रिसौंहैं॥
कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान।
नाइ राम-पद-कमल-जुग, बोले गिरा प्रमाद॥

—रामचरितमानस

रस—रौद्र। स्थायी भाव—क्रोध। आश्रय—लक्ष्मण। आलंबन—जनक के वचन। उद्दीपन—जनक के वचनों की कठोरता। अनुभाव—भौंहैं टेढ़ी होना, ओठ फड़कना, नेत्रों का रिसौंहे होना। संचारी भाव—अमर्ष, उग्रता आदि।

(६) भयानक रस

समस्त सर्पों सँग श्याम ज्यों कढ़े
कलिंद की नन्दिनि के सु-अंक से।
खड़े किनारे जितने मनुष्य थे,
सभी महा शंकित भीत हो उठे॥
हुए कई मूर्छित घोर त्रास से,
कई भगे, मेदिनि में गिरे कई।

हुई यशोदा अति ही प्रकंपिता,
व्रजेश भी व्यस्त-समस्त हो गये ॥

—प्रिय प्रवास

रस—भयानक । स्थायी भाव—भय । आश्रय—व्रजवासी । आलंबन—सर्पो के घिरे हुए कृष्ण का दृश्य । अनुभाव—भागना, गिरना, काँपना, मूर्च्छित होना (प्रलय) । संचारी भाव—शंका, आवेग, मोह ।

(७) बीभत्स रस

(१) रिपु-आँतन की कुडली करि जोगिनी चबात ।
पीबहि में पागी मनो जुवति जलेबी खात ॥

रस—बीभत्स । स्थायी भाव—जुगुप्सा । आश्रय—दर्शक । आलंबन—जोगिनी । उद्दीपन—आँतों को पीब में पाग-पाग कर खाना । अनुभाव—रोमांच, नाक-भौ सिकोड़ना, आँखें बन्द करना आदि (ऊपर से आक्षेप करना होगा) । संचारी भाव—आवेग आदि (आक्षेप करना होगा) ।

(२) सिर पै बैठ्यो काग, आँख दोउ खात निकारत ।
खैंचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनन्द उर धारत ॥
गीध जाँघ को खोदि-खोदि कै माँस उखारत ।
स्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खान विचारत ॥
बहु चील नोचि ले जात तुच, मोद-मढ्यो सब को हियो ।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन्ह कहँ दियो ॥

—सत्य हरिश्चन्द्र नाटक

रस—बीभत्स । स्थायी भाव—जुगुप्सा । आश्रय—दर्शक । आलंबन—श्मशान । उद्दीपन—काग का आँखों को निकालना, स्यार का जीभ को खींचना, गीध का जाँध का माँस उखाड़ना आदि । अनुभाव—रोमांच, नाक-भौं सिकोड़ना आदि (ऊपर से आक्षेप करना होगा) । संचारी भाव—आवेग आदि (आक्षिप्त) ।

(३) रक्त-मांस के सड़े पंक से उमड़ रही है
महाघोर दुर्गन्ध, रुद्ध हो उठती श्वासा ।

तैर रहे गल अस्थि-खण्डशत, रुण्ड-मुण्डहत
कुत्सित कृमि-संकुल कर्दम में महानाश के ॥ —पन्त

रस—बीभत्स । स्थायी भाव—जुगुत्सा । आश्रय—मजदूर । आलंबन—युद्ध-भूमि । उद्दीपन—सड़ाव, दुर्गन्ध आदि । अनुभाव—श्वास का रुद्ध होना ।

(८) अद्भुत रस

(१) अखिल भुवन चर-अचर जग हरिमुख में लखि मातु ।
चकित भयी, गदगद वचन, विकसित दृग, पुलकातु ॥

रस—अद्भुत । स्थायी भाव—विस्मय । आश्रय—माता यशोदा । आलंबन—कृष्ण का मुख । उद्दीपन—मुख में अखिल भुवनों और चराचर प्राणियों का दीखना । अनुभाव—स्वरभंग, रोमांच, नेत्रों का विकास । संचारी भाव—त्रास आदि ।

(२) दिखरावा निज मातहि अद्भुत रूप अखंड ।
रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मांड ॥

अगनित रवि-ससि सिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिन्धु महि कानन ॥
तनु पुलकित, मुख बचन न आवा । नयन मूँदि चरनन सिर नावा ॥
—रामचरितमानस

रस—अद्भुत । स्थायी भाव—विस्मय । आश्रय—कौसल्या । आलंबन—राम का अद्भुत रूप । उद्दीपन—रूप की अद्भुतता, रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड, असंख्य सूर्य आदि । अनुभाव—रोमांच, स्वरभंग, नेत्रों को मूँदना, सिर नवाना ।

(३) सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित सिय-भ्राता ॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित बन्धु-सिय सुन्दर बेखा ॥
जहँ चितवइ तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥
सोइ रघुबर, सोइ लक्ष्मन-सीता । देखि सती अति भयी सभीता ॥
हृदय कम्प, तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूँदि बैठी मग माहीं ॥
—रामचरितमानस

रस—अद्भुत । स्थायी भाव—विस्मय । आश्रय—सती । आलंबन—राम

का आगे-पीछे सर्वत्र दिखायी देना। अनुभाव—कम्प, स्तम्भ, नेत्र मूंदकर बैठ जाना। संचारी भाव—त्रास, जड़ता, मोह।

(६) शान्त रस

(१) बुद्ध का संसार-त्याग—

क्या भाग रहा हूँ भार देख ?
तू मेरी ओर निहार देख—
मैं त्याग चला निस्सार देख।
अटकेगा मेरा कौन काम।
ओ क्षणभंगुर भव ! राम-राम !

रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
कह, कब तक है वह प्राण-मात्र ?
भीतर भीषण कंकाल-मात्र,
बाहर-बाहर है टीमटाम।
ओ क्षणभंगुर भव ! राम-राम !

मैं सूँघ चुका वे फुल्ल फूल,
झड़ने को हैं वे झटिति झूल,
चख देख चुका हूँ मै समूल।
सड़ने को हैं वे अखिल आम।
ओ क्षणभंगुर भव ! राम-राम !—**यशोधरा**

रस—शान्त। स्थायी भाव—निर्वेद। आश्रय—गौतम बुद्ध। आलंबन—निस्सार और क्षणभंगुर संसार। उद्दीपन—सांसारिक विषयों की क्षणभंगुरता, विद्रूप परिणाम और निस्सारता का बार-बार ध्यान आना। अनुभाव—संसार का त्याग कर घर से निकल जाना। संचारी भाव—मति, वितर्क, धृति।

(२) समता लहि सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निमि-वासर सुख निधि लह्या, अंतर प्रगट्या आप॥

—**कबीर**

रस—शान्त। स्थायी भाव—शम।

(३) अपुनपो आपुन ही में पायो।
सबद-हि-सबद भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो॥
ज्यों कुंडल नाभी कसतूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिर चितयो जब चेतन ह्वै करि आपुनहो में पायो॥
सपने माँहि नारि को भ्रम भयो, बालक कहूँ गमायो।
जागि लख्यो ज्यों-को-त्यों ही है, ना कहुँ गयो न आयो॥
सूरदास, समुझे की यह गति, मन-ही-मन मुसकायो।
कही न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगे गुर खायो॥

—सूरदास

रस—शान्त। स्थायी भाव—शम। आश्रय—साधक। आलंबन—आत्म-ज्ञान। अनुभाव—मन-ही-मन मुसकाना। संचारी भाव—धृति।

(१०) वत्सल रस

हरि अपने रँग में कछु गावत।
तनक-तनक चरनन सों नाचत, मनहिं-मनहिं रिझावत॥
बाँहि उँचाइ काजरी-धौरी गैयन टेरि बुलावत।
माखन तनक आपने कर ले तनक बदन में नावत॥
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में लवनी लिये खवावत।
दुरि देखत जसुमति यह लीला हरखि अनन्द बढ़ावत॥

रस—वात्सल्य। स्थायी भाव—स्नेह (वात्सल्य)। आश्रय—यशोदा। आलंबन—बालक कृष्ण। उद्दीपन—कृष्ण का गाना, नाचना, बाँह उठाकर गायों को बुलाना, मुँह में माखन डालना, प्रतिबिंब को माखन खिलाना। अनुभाव—यशोदा का छिपकर देखना। संचारी भाव—हर्ष आदि।

खण्ड ६
छन्द

(१) गद्य और पद्य

छन्दोमयी रचना को पद्य कहते हैं और छन्दोविहीन रचना को गद्य। पद्य या छन्दोमयी रचना अनेक चरणों में विभक्त होती है और प्रत्येक चरण में वर्णों या मात्राओं की एक निश्चित संख्या होती है। गद्य या छन्दोविहीन रचना अनेक वाक्यों में विभक्त होती है पर इन वाक्यों में वर्णों या मात्राओं की संख्या निश्चित नहीं होती।

उदाहरण

(१) प्रभु ने तुम को कर दान किये।
सब वांछित-वस्तु-विधान किये॥
तुम प्राप्त करो उनको न अहो!।
फिर है किसका यह दोष, कहो!॥
समझो न अलभ्य किसी धन को।
नर हो, न निराश करो मन को॥

इस रचना में तोटक छन्द के छह चरण हैं। प्रत्येक में १२-१२ वर्ण हैं।

(२) धन्य जनम जगती-तल तासू।
पितहि प्रमोद चरति सुनि जासू॥
चारि पदारथ कर-तल ताके।
प्रिय पितु-मात प्रान-सम जाके॥

इस रचना में चौपाई छन्द के चार चरण हैं। प्रत्येक में १६-१६ मात्राएँ हैं।

ऊपर की रचनाएँ पद्य-रचनाएँ हैं।

(३) सत्य के बराबर तप नहीं। झूठ के बराबर कोई पाप नहीं। जिसके हृदय में सत्य रहता है, उसके हृदय में स्वयं भगवान रहते है।

इस रचना में तीन वाक्य हैं। तीनों वाक्यों में वर्णों और मात्राओं की संख्या भिन्न-भिन्न है। यह गद्य रचना है।

(२) वर्ण और मात्राएँ

वर्ण के दो प्रकार होते हैं—(१) ह्रस्व और (२) दीर्घ। छन्दशास्त्र में ह्रस्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहा जाता है। लघु वर्ण की एक मात्रा गिनी जाती है और गुरु वर्ण की दो मात्राएँ। छन्द-शास्त्र में दो से अधिक मात्राएँ किसी वर्ण की नही गिनी जातीं।

मात्रा केवल स्वर की होती है, व्यंजन की नही। छन्दों में वर्ण या मात्रा गिनने में केवल स्वर को ध्यान में रखा जाता है, व्यंजन पर कीई ध्यान नही दिया जाता, उसे छोड़ दिया जाता है। स्वास्थ्य शब्द की तीन मात्राएँ होंगी, दो आ की और एक अ की; स् व् स् थ् य् इन व्यंजनों की कोई मात्रा नहीं होगी (स्वास्थ्य = स्+व्+आ+स्+थ्+य्+अ)।

अ इ उ ऋ लृ लघु वर्ण हैं और इनकी एक-एक मात्रा होती है।

आ ई ऊ ॠ ए ऐ ओ औ गुरु वर्ण है और इनकी दो-दो मात्राएँ होती है।

लघु वर्ण का गुरु—नीचे बतायी स्थितियों में लघु वर्ण गुरु हो जाता है और उसकी दो मात्राएँ गिनी जाती हैं :

(१) अनुस्वार से युक्त होने पर। जैसे—हंस में 'हं', चंद्र में 'चं' और संयम में 'सं' गुरु हैं।

(२) विसर्ग से युक्त होने पर। जैसे—दुःख में 'दुः' और निःसृत में 'निः' गुरु हैं।

(३) संयुक्त व्यंजन के पूर्व। जैसे—सत्य में 'स', मन्द में 'म' और वज्र में 'व' गुरु है।

(४) हलन्त व्यंजन के पूर्व। जैसे—सत् में 'स', महत् में 'ह' और राजन् में 'ज' गुरु हैं।

(५) चरण के अन्त में यदि आवश्यकता हो तो । जैसे—

वही हमारी यह मातृ-भूमि ।

यह उपेन्द्रवज्रा छन्द का चरण है जिसके अन्त में गुरु वर्ण होना चाहिए। यहाँ उपेन्द्रवज्रा छन्द के चरण के अन्त में आने से **'मि'** लघु होने पर भी गुरु माना जायगा ।

टिप्पणी—१. चन्द्रबिन्दु से युक्त होने पर वर्ण की मात्रा में अन्तर नहीं पड़ता । चन्द्रबिन्दु से युक्त लघु वर्ण की एक ही मात्रा गिनी जायगी तथा गुरु वर्ण की दो ही मात्राएँ । जैसे—हँसी में 'हँ' वर्ण लघु है तथा हाँसी में 'हाँ' वर्ण गुरु है ।

२. संयुक्त व्यंजन के पूर्व का लघु वर्ण तभी गुरु माना जायगा जब उसे पढ़ने मे उस पर जोर पड़े, यदि जोर न पड़े तो वह लघु ही रहेगा और उसकी एक ही मात्रा गिनी जायगी । जैसे—

(१) **तुम्हारा** में **'तु'** को पढ़ने में उस पर जोर नही पड़ता । अतः उसकी एक ही मात्रा होगी ।

(२) **तुम्मारा** में **'तु'** को पढ़ने में उस पर जोर पड़ता है अतः उसकी दो मात्राएँ होंगी ।

(३) **देश-प्रेम** को यदि **देश-प्रेम** की तरह पढ़ा जायगा, अर्थात् **'श'** पर जो पड़ेगा तो 'श' वर्ण गुरु हो जायगा, पर यदि **'देश-प्रेम'** पढ़ा जायगा और **'श'** पर जोर नही पड़ेगा तो **'श'** लघु ही रहेगा ।

हिन्दी में साधारणतया एक शब्द के भीतर होने पर ही संयुक्त व्यंजन के पूर्व का वर्ण गुरु होता है ।

गुरु वर्ण का लघु—नीचे बतायी स्थितियों में गुरु वर्ण लघु गिना जाता है :

(१) ए और ओ वर्णों का जब ह्रस्व या एकमात्रिक उच्चारण हो । जैसे—

१. जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलहि, न कछु सन्देहू ।।

इन पंक्तियों में **जेहि, जेहि** और **तेहि** में 'ए' का लघु उच्चारण है अतः उसकी एक-एक मात्रा ही गिनी जायगी ।

२. प्रभु दोउ चाप-खण्ड महि डारे।

इस पंक्ति में दोउ में 'ओ' का उच्चारण लघु है अतः उसकी एक ही मात्रा गिनी जायगी।

(२) सवैया, मनहरण कवित्त आदि छन्दों में आवश्यकता हो तो किसी भी गुरु वर्ण को लघु पढ़ा जा सकता है। जैसे—

१. कविता करके तुलसी न लसे, कविता ल**सी** पा तुलसी **की** कला।

इस पंक्ति में 'लसी' का '**सी**' और '**की**' वर्ण लघु पढ़े जायेंगे।

२. धूरि-भरे अति सोहत स्याम **जू**, तैं**सी** बनी सिर सुन्दर चोटी।

इस पंक्ति में '**जू**' और '**सी**' लघु पढ़े जायेंगे।

वर्णों और मात्राओं की गिनती

१. क	= १ वर्ण, १ मात्रा	१६. हंस	= २ वर्ण, ३ मात्रा
२. क्ल	= १ वर्ण, १ मात्रा	१७. हंसी	= २ वर्ण, ४ मात्रा
३. स्थ्य	= १ वर्ण, १ मात्रा	१८. हँसी	= २ वर्ण, ३ मात्रा
४. कँ	= १ वर्ण, १ मात्रा	१९. हाँसी	= २ वर्ण, ४ मात्रा
५. का	= १ वर्ण, २ मात्रा	२०. दुःख	= २ वर्ण, ३ मात्रा
६. क्ला	= १ वर्ण, २ मात्रा	२१. कार्य	= २ वर्ण, ३ मात्रा
७. कल	= २ वर्ण, २ मात्रा	२२. जगत्	= २ वर्ण, ३ मात्रा
८. क्लम	= २ वर्ण, २ मात्रा	२३. श्रवण	= ३ वर्ण, ३ मात्रा
९. काल	= २ वर्ण, ३ मात्रा	२४. अमृत	= ३ वर्ण, ३ मात्रा
१०. काल	= २ वर्ण, ३ मात्रा	२५. अमृत	(उच्चारण = अम्मृत)
११. सत्य	= २ वर्ण, ३ मात्रा		= ३ वर्ण, ४ मात्रा[1]
१२. स्वास्थ्य	= २ वर्ण, ३ मात्रा	२६. कर्ता	= २ वर्ण, ४ मात्रा
१३. कार्त्स्न्य	= २ वर्ण, ३ मात्रा	२७. तुम्हारा	= ३ वर्ण, ५ मात्रा[1]
१४. सिन्धु	= २ वर्ण ३ मात्रा	२८. तुम्मारा	= ३ वर्ण, ६ मात्रा
१५. सिंधु	= २ वर्ण, ३ मात्रा	२९. कन्हैया	= ३ वर्ण, ५ मात्रा[1]

३०. देश-प्रेम (उच्चारण देश प्रेम) = ४ वर्ग, ६ मात्रा[2]

३१. देश-प्रेम (उच्चारण देश प्रेम) = ४ वर्ण, ७ मात्रा[3]

---

[1]केवल, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं में, संस्कृत में नहीं।

[2]उदाहरण—**देश-प्रेम** जिसमें नहीं, वह जीवन है व्यर्थ।

[3]उदाहरण—**देश-प्रेम** जहाँ नहीं, वह जीवन है व्यर्थ॥

(३) गण और उनके भेद

गण—तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं। गणों के आठ भेद हैं। उनके नाम, लक्षण, रूप और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

सं०	नाम	लक्षण	रूप	उदाहरण	
१.	मगण	तीनों गुरु	ऽ ऽ ऽ	मातारा	सावित्री
२.	नगण	तीनों लघु	। । ।	नसल	अनल
३.	भगण	आदि गुरु	ऽ । ।	मानस	शंकर
४.	जगण	मध्य गुरु	। ऽ ।	जभान	गणेश
५.	सगण	अन्त्य गुरु	। । ऽ	सलगा	कमला
६.	यगण	आदि लघु	। ऽ ऽ	यमाता	भवानी
७.	रगण	मध्य लघु	ऽ । ऽ	राजभा	भारती
८.	तगण	अन्त्य लघु	ऽ ऽ ।	ताराज	आदित्य

गणों को ज्ञात करने का सूत्र—नीचे लिखे सूत्र से ऊपर बताये गणों का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है—

य-मा-ता-रा-ज-भा-न-स-ल-गा

जिस गण का रूप ज्ञात करना हो उसके आदि वर्ण को सूत्र में देखो। फिर उसके आगे के दो वर्ण और ले लो। तीनों को मिलाने से जो रूप होगा वही उस गण का रूप समझना चाहिए। उदाहरण के लिए, यगण का रूप ज्ञात करना है तो **य** को और उसके आगे के दो वर्णों को, अर्थात् **मा** और **ता** को, लो। तीनों को मिलाने से **यमाता** हुआ। यगण का रूप। ऽ ऽ होगा। इसी प्रकार मगण का **मातारा** अर्थात् ऽ ऽ ऽ होगा।

(४) यति और गति

यति—छन्द को पढ़ते समय प्रत्येक चरण के अन्त में ठहरना पड़ता है। कभी-कभी चरण लम्बा होता है तो बीच में भी एक या अधिक स्थानों पर ठहरना पड़ता है। इस ठहरने को यति या विराम या विश्राम कहते हैं। जैसे—

तारे डूबे, तम टल गया, छा गयी व्योम लाली।

मन्दाक्रान्ता छन्द में इस चरण के पहले चार वर्णों के बाद, फिर छह वर्णों के बाद और फिर सात वर्णों के बाद, इस प्रकार कुल तीन बार ठहरना पड़ता है। मन्दाक्रान्ता के चरण में ४।६।७ पर यति होती है।

यति शब्द के मध्य में नहीं पड़नी चाहिए।

गति—छन्द के पढ़ने की लय का नाम गति है। प्रत्येक छन्द की अपनी लय होती है। मात्रिक छन्दों और मुक्तक वर्णित छन्दों में लय का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि मात्राएँ या वर्ण पूरे होने पर भी यदि गति नहीं होती तो छन्द नहीं बनता। जैसे—

बरखा-काल मेघ नभ छाये।

चौपाई के इस चरण को यदि यों कर दिया जाय—

मेघ नभ बरखा-काल छाये। या
छाये नभ बरखा-काल मेघ।

तो यह चौपाई का चरण नहीं रह जायगा, १६ मात्राएँ होने पर भी यहाँ चौपाई छन्द नहीं होगा।

(५) छन्दों के प्रकार

छन्दों के दो प्रकार होते हैं—(१) मात्रिक और (२) वर्णिक। मात्रिक छन्दों में मात्राओं की संख्या नियत रहती है और वर्णिक छन्दों में वर्णों की।

छन्दों के फिर तीन प्रकार होते हैं—(१) सम, (२) अर्धसम, (३) विषम।

सम छन्दों के समस्त चरणों में मात्राओं (या वर्णों) की संख्या बराबर होती है। जैसे—चौपाई और वंशस्थ।

अर्धसम छन्दों के दो-दो चरणों में मात्राओं (या वर्णों) की संख्या बराबर होती है। जैसे—दोहा और वियोगिनी।

जो छन्द सम या अर्धसम नहीं होते उन्हें विषम छन्द कहते हैं। चार से अधिक (छह आदि) चरणों वाले छन्दों को भी विषम छन्द कहा जाता है। जैसे—छपय और कुण्डलिया।

वर्णिक छन्दों के दो और भी प्रकार होते हैं—(१) गणबद्ध, और (२) मुक्तक।

गणबद्ध छन्दों के चरणों में वर्ण, और साथ ही गण, दोनों की संख्या नियत रहती है। जैसे—इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, सवैया आदि।

मुक्तक छन्दों के चरणों में केवल वर्णों की संख्या नियत रहती है, गणों या लघु-गुरु का कोई नियम नहीं होता। जैसे—मनहरण कवित्त, अनुष्टुप् आदि।

बत्तीस से कम मात्राओं के, और छब्बीस से कम वर्णों के, छन्द साधारण कहलाते हैं।

बत्तीस से अधिक मात्राओं के, और छब्बीस से अधिक वर्णों के, छन्द दण्डक कहे जाते है।

छन्द-भेदों का चित्र

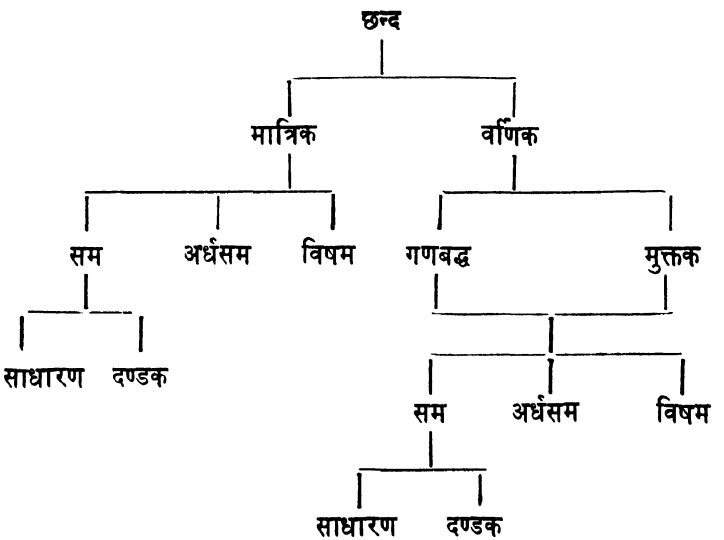

(६) प्रमुख छन्द

(क) मात्रिक सम छन्द

१. तोमर (१२)

(१) प्रत्येक चरण में १२ मात्रा ।

(२) अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) ।

नव लोक में उल्लास
सुमनावली में हास
खग-वृन्द में कल्लोल
लायी उषा अनमोल

२. चौपई (१५)

(१) प्रत्येक चरण में १५ मात्रा ।

(२) अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) ।

वीर-भूमि यह राजस्थान
जननि हमारी सब गुण-खान
जननी के उर के अभिमान
हम हैं सिंहों की सन्तान

३. चौपाई (१६)

(१) प्रत्येक चरण में १६ मात्रा ।

(२) अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) न हों ।

(३) चौपई के अन्त में एक मात्रा बढ़ाने से चौपाई बनती है ।

सुनि जननी ! सोह सुत बड़भागी
जो पितु - मात - वचन - अनुरागी
तनय मात - पितु - तोखनहारा
दुरलभ जननि ! सकल संसारा

४. शृंगार (१६)

(१) प्रत्येक चरण में १६ मात्रा ।
(२) अन्त में गुरु-लघु (ऽ ।) ।
(३) चौपई के पहले एक मात्रा जोड़ने से शृंगार बनता है ।

गयी दासी, पर उसकी बात
दे गयी मानो कुछ आघात—
भरत-से सुत पर भी सन्देह !
बुलाया तक न उसे जो गेह !

५. रोला (२४)

(१) प्रत्येक चरण में २४ मात्रा ।
(२) ११, १३ पर यति ।

हुआ बाल-रवि उदय कनक-नभ किरणें फूटीं
भरित तिमिर पर परम प्रभामय बनकर टूटीं
जगत जगमगा उठा विभा वसुधा में फैली
खुली अलौकिक ज्योति- पुंज की मंजुल थैली

६. रूपमाला (२४)

(१) प्रत्येक चरण में १४ मात्रा ।
(२) १४, १० पर यति ।
(३) अन्त में गुरु-लघु (ऽ ।) ।

सुन्दरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाइ
साथ लै मुनि बालमीकहि दीह दुक्ख नसाइ
राम धाम चले भले, जस लोक-लोक बढ़ाइ
भाँति-भाँति सुदेश केसव दुंदभीन बजाइ

७. गीतिका (२६)

(१) प्रत्येक चरण में २६ मात्रा ।
(२) १४, १२ पर यति ।
(३) अन्त में लघु-गुरु (। ऽ) ।

(४) रूपमाला के अन्त में २ मात्राएँ जोड़ने से गीतिका बनता है।

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं
बोध-वर्धक लेख लिखने में कमी करना नही

८. हरिगीतिका (२८)

(१) प्रत्येक चरण में २८ मात्रा।
(२) १६, १२ पर यति।
(३) अन्त में लघु-गुरु (। ऽ)।
(४) गीतिका के आरम्भ में दो मात्राएँ जोड़ने से हरिगीतिका बनता है।

संसार की समर-स्थली में धीरता धारण करो
चलते हुए निज इष्ट पथ पर संकटों से मत डरो
जीते हुए भी मृतक सम रह-कर न केवल दिन भरो
वर-वीर बनकर आप अपनी विघ्न-बाधाएँ हरो

९. सरसी (२७)

(१) प्रत्येक चरण मे २७ मात्रा।
(२) १६, ११ पर यति।
(३) अन्त में गुरु-लघु (ऽ।)।
(४) पहली १६ मात्राओं की लय चौपाई के समान और पिछली ११ मात्राओं की दोहे के दूसरे चरण के समान होती है।

अंशुमालि के शुभागमन की बेला समझ समीप
नभ में बुझा चुके थे सुर भी अपने घर के दीप
कल-रव सुमन-विकास संग ले निकली रवि को कोर
क्षण भर पहले ही दो प्रेमी कहाँ गये, किस ओर

१०. सार (२८)

(१) प्रत्येक चरण में २८ मात्रा।
(२) १६, १२ पर यति।

(३) पहली १६ मात्राओं की लय चौपाई की भाँति होती है (हरिगीतिका में ऐसा नहीं होता)। सरसी के आगे एक मात्रा जोड़ने से सार बनता है।

सुख पाने के लिए जगत में एक सहायक दुख है
दुःख जगाता है सद्गुण को सद्गुण लाता सुख है
बाधा विघ्न विपत्ति कठिनता जहाँ-जहाँ सुन पाना
सब के बीच निडर हो जाना दुख को गले लगाना

११. ताटंक या लावनी (३०)

(१) प्रत्येक चरण में ३० मात्रा।

(२) १६, १४ पर यति।

(३) सार के आगे दो मात्राएँ बढ़ाने से ताटंक बनता है।

है बिखेर देती वसुन्धरा मोती सबके सोने पर
रवि बटोर लेता है उसको सदा सवेरा होने पर
और विराम-दायिनी अपनी संध्या को दे जाता है
शून्य श्याम तनु जिससे उनका नया रूप झलकाता है

१२. वीर या आल्हा (३१)

(१) प्रत्येक चरण में ३१ मात्रा।

(२) १६, १५ पर यति।

(३) अन्त में गुरु-लघु (ऽ।)।

(४) ताटंक के आगे एक मात्रा बढ़ाने से, या चौपाई और चौपई को मिला देने से, वीर छन्द बनता है।

जे नर सरन तकैं मलखे की उनकी आस तकै मलखान !
व्यर्थहिं खीर दियो माता ने क्यों नहिं गरल करायो पान ?
सुत मन्त्री परिवार सनेही संकट परे करत मोहि याद
विपति परे तिन को मग हेरौं मेरे जीतब को धिरकार।

(ख) मात्रिक अर्धसम छन्द

१३. बरवै

(१) विषम चरण में १२ मात्रा।

(२) सम चरण में ७ मात्रा।

सबसे मिलकर रह मन ! बैर बिसार।
दुर्लभ नर-तन पाकर कर उपकार ॥

१४. दोहा

(१) विषम चरण में १३ मात्रा।

(२) सम चरण में ११ मात्रा।

(३) विषय चरणों के अन्त में (ऽ।) न हो, सम चरणों के अन्त में (ऽ।) हो।

हंस ! छोड़ आये कहाँ मुक्ताओं का देश ?
यहाँ बन्दिनी के लिए लाये क्या सन्देश ?

१५. सोरठा

(१) विषम चरण में ११ मात्रा।

(२) सम चरण में १३ मात्रा।

(३) तुक विषम चरणों की मिलती है।

(४) यह छन्द दोहे का उलटा होता है।

अकबर समँद अथाह तहँ डूबा हिन्दू-तुरक
मेवाड़ों तिण माँह पोयण-फूल प्रतापसी

१६. उल्लाला

(१) विषम चरण में १५ मात्रा।

(२) सम चरण में १३ मात्रा।

(३) सम चरण दोहे के विषम चरण के समान होता है तथा विषम चरण दोहे के विषम चरण के पूर्व दो मात्रा बढ़ाने से बनता है।

हे शरण-दायिनी देवि ! तू करती सब का त्राण है
तू मातृभूमि, सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है

(ग) मात्रिक विषम छन्द

१७. कुंडलिया

(१) दोहा और रोला छन्दों के मेल से कुंडलिया छन्द बनता है।

(२) दोहा के अन्त के शब्द रोला के आरम्भ में और रोला के अन्त के कुछ शब्द दोहे के आरम्भ में आते हैं।

कोई संगी नहिं उतै है इत ही को संग
पथी ! लेहु मिलि ताहि तें **सब सों सहित उमंग**
सब सों सहित उमंग बैठि तरनी के माँही
नदिया - नाव सँजोग फेरि यह मिलि है नाही
बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई
अपनी-अपनी गैल पथी जैहै सब **कोई**

१८. छप्पय

रोला और उल्लाला के मिलने से छप्पय छन्द बनता है।

सर्व-भूत हित महा-मन्त्र का सबल प्रचारक
सदय हृदय से एक-एक जन का उपकारक
सत्य भाव से विश्व-बन्धुता का अनुरागी
सकल सिद्धि-सर्वस्व सर्व-गत सच्चा त्यागी
उसकी विचार-धारा धरा के धर्मों मे है वही
सब सार्व-भौम सिद्धान्त का आदि प्रवर्तक है वही

(घ) आर्या-प्रकरण

आर्या छन्द-परिवार में ५ प्रमुख छन्द है जिनमे ३ अर्धसम और २ विषम हैं। इनके नाम आदि इस प्रकार हैं :

(१) गीति—विषम चरण में २०, सम चरण में १८ मात्रा।
(२) उपगीति—विषम चरण मे १२, सम चरण में १५ मात्रा।
(३) आर्यागीति—विषम चरण में १२, सम चरण मे २० मात्रा।
(४) उद्गीति—प्रथम-तृतीय चरण मे १२-१२, द्वितीय चरण में १५ और चतुर्थ चरण में १८ मात्रा (आर्या का उलटा)।
(५) आर्या—प्रथम-तृतीय चरणों में १२-१२, द्वितीय चरण में १८ और चतुर्थ चरण में १५ मात्रा।

उदाहरण

(१) गीति—

करुणे ! क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोयी—
मेरी विभूति है जो उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई ?

(२) उपगीति—

हृदय-स्थित स्वामी की सजनि ! उचित क्या नहीं अर्चा ?
मन सब उन्हें चढ़ावें चन्दन की एक क्या चर्चा ?

(३) आर्यागीति—

वन की भेंट मिली है एक नई वह जड़ी मुझे जीजी से
खाने पर सखि ! जिसके गुड़ गोबर-सा लगे स्वयं ही जी से

(४) आर्या—

इतनी बड़ी पुरी में क्या ऐसी दुःखिनी नहीं कोई ?
जिसकी सखी बनूँ मैं जो मुझ-सी हो हँसी-रोयी ?

(ङ) वर्णिक सम छन्द

१. इन्द्रवज्रा (११)

ता-ता-ज-गा-गा प्रिय इन्द्रवज्रा

(१) प्रत्येक चरण में ११ वर्ण

(२) गण—ऽऽ। ऽऽ। ऽ।ऽ ऽ ऽ

त त ज ग ग

मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ
भाता मुझे सो नव मित्र-सा है
देखूँ उसे मैं नित बार-बार
मानो मिला मित्र मुझे पुराना

२. उपेन्द्रवज्रा (११)

उपेन्द्रवज्रा ज-त-जा-ग-गा हो

(१) प्रत्येक चरण में ११ वर्ण।

(२) गण—ज त ज ग ग

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

(३) इन्द्रवज्रा का प्रथम वर्ण लघु कर देने से उपेन्द्रवज्रा हो जाता है।

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै

बिना विचारे यदि काम होगा
कभी न अच्छा परिणाम होगा

३. उपजाति (११)

(१) प्रत्येक चरण में ११ वर्ण, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेल से उपजाति बनता है।

(२) गण—त (ज) त ज ग ग

ऽ (।) ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

संसार है एक अरण्य भारी
हुए जहाँ है हम मार्गचारी
जो कर्म-रूपी न कुठार होगा
तो कौन निष्कंटक भार होगा

४. इंदिरा या कनकमंजरी (११)

कनकमंजरी ना-र-रा-ल-गा

(१) प्रत्येक चरण में ११ वर्ण।

(२) ६ और ५ पर यति।

(३) गण—न र र ल ग

। । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ

रुचिर चन्द्र की चन्द्रिका खिली
निज अशोक से माधवी मिली
अवधि हो गयी पूर्ण अन्त मे
सुयश छा रहा है दिगंत में

५. वंशस्थ (१२)

सु छन्द वंशस्थ ज-ता-ज-रा कहो

(१) प्रत्येक चरण में १२ वर्ण।

(२) गण—ज त ज र—। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

दिनान्त था, थे दिननाथ डूबते
सधेनु आते गृह ग्वाल-बाल थे
दिगंत में गो-रज थी समुत्थिता
विषाण नाना बजते सवेणु थे

६. भुजंगप्रयात (१२)

य चारों बनाओ भुजंगप्रयातम्

(१) प्रत्येक चरण में १२ वर्ण।

(२) गण—य य य य—। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

बना लो जहाँ ही वही स्वर्ग होगा
स्वयंभूत थोड़ा कहीं स्वर्ग होगा
खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग होगा
भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग होगा

७. तोटक (१२)

वर तोटक चार धरो सगणा

(१) प्रत्येक चरण में १२ वर्ण।

(२) गण—स स स स—। । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ

निज गौरव का नित ज्ञान रहे
हम भी कुछ है, यह ध्यान रहे
सब जाय अभी, पर मान रहे
मरणोत्तर गुंजित गान रहे

८. द्रुतविलम्बित (१३)

द्रुतविलम्बित छन्द न-भा-भ-रा

(१) प्रत्येक चरण में १२ वर्ण।

(२) न भ भ र—। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

प्रबल जो तुम में पुरुषार्थ हो
सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो
प्रगति के पथ में विचरो उठो
भुवन में सुख-शान्ति भरो उठो

९. वसन्ततिलका (१४)

जानो वसन्ततिलका त-भ-जा-ज-गा-गा

(१) प्रत्येक चरण में १४ वर्ण।

(२) गण—त भ ज ज ग ग

SSI SII ISI ISI S S

था क्वार मास, निशि थी अति रम्य राका
पूरी कला-सहित शोभित चन्द्रमा था
ज्योतिर्मयी परम सर्व दिशा बना के
सौन्दर्य साथ लसती क्षिति में सिता थी

१०. मालिनी (१५)

न-न-म-य-य बनाओ, मालिनी छन्द प्यारा

(१) प्रत्येक चरण में १५ वर्ण।

(२) ८, ७ पर यति।

(३) गण—न न म य य

III III SS, S ISS ISS

प्रिय पति ! वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?
दुख जलनिधि-डूबी का सहारा कहाँ है ?
लख मुख जिसका मैं आज लौ जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहाँ है ?

११. शिखरिणी (१७)

रसों रुद्रों छिन्ना, य-म-न-स-भ-ला-गा शिखरिणी

(१) प्रत्येक चरण में १७ वर्ण।

(२) ६, ११ पर यति।

(३) गण—य म न स भ ल ग

ISS SSS III IIS SII I S

सदा सच्चे साथी सकल जग के एक तुम हो।
तुम्हीं को हे स्वामी! सुकर भव-उद्धार करना ॥
तुम्हीं ने पायी है जय भय तथा क्रोध पर भी।
करो रक्षा भू की खग-मृग जनों की, मनुज की ॥

१२. मन्दाक्रान्ता (१७)

मन्दाक्रान्ता, श्रुति रस ऋषी, मा-भ-ना-ता-त-गा-गा

(१) प्रत्येक चरणों में १७ वर्ण।

(२) ४, ६, ७, पर यति ।

(३) गण—म भ न त त ग ग

ऽ ऽ ऽ ऽ, । । । । । । ऽ, ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

पीछे बातें विविध करती काँपती कष्ट पाती
आयी लेके स्व-प्रिय पति को सद्म में नन्द-वामा
आशा की है अमित अहिमा धन्य तू देवि आशा !
तू छू के है मृतक बनते प्राणियों को जिलाती

१३. शार्दूल-विक्रीड़ित (१९)

मा-सा-जा-स-त-ता-ग, भानु-मुनि-से, शार्दूल-विक्रीड़िता

(१) प्रत्येक चरण में १९ वर्ण ।

(२) १२, ७ पर यति ।

(३) गण—म स ज स त त ग

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ, ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

जाती प्रेम ! न जाति-पाँति तुझ से पूछी किसी की कहीं
तेरे सम्मुख रंक और नृप का है भेद होता नही
दोनों ही वन और गेह जग में हैं तुल्य तेरे लिए
ऊँचे मन्दिर से कुटी तक सभी हैं चाह तेरी किये

१४. स्रग्धरा (२१)

मा-रा-भा-ना-त-ता-ता, मुनि-मुनि-मुनि से, स्रग्धरा वृत्त होता

(१) प्रत्येक चरण में २१ वर्ण ।

(२) ७, ७. ७ पर यति ।

(३) म र भ न त त त

ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ, । । । । । । । ऽ, ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

नाना फूलों-फलों से उपचित जग की वाटिका है विचित्रा
भोक्ता हैं सैकड़ों ही मधुप, शुक तथा कोकिला गानशीला
कौवे भी हैं अनेकों पर-धन हरने में सदा अग्रगामी
कोई है एक माली सुधि इन सब की जो सदा ले रहा है

१५. मदिरा सवैया (२२)

(१) ७ भगण और १ गुरु।

(२) ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ

सिंधु तर्‌यो उसको बनरा, तुम पै धनु-रेख गयी न तरी
बानर बाँधत, सो न बँध्यो, उन बारिधि बाँधि कै बाट करी
श्री रघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हें दसकंठ ! न जानि परी
तेलहु तूलहु पूँछ जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी

१६. मत्तगयंद या मालती सवैया (२३)

(१) ७ भगण और दो गुरु

(२) ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ ऽ

(३) मदिरा के आगे एक गुरु जोड़ने से मत्तगयंद बनता है।

देखि बिहाल बिवाइन सों पग कंटक-जाल लगे पुनि जोये।
हाय ! महा दुख पाये सखा ! तुम आये इतै न कितै दिन खोये
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहि, नैननि के जल सों पग धोये

१७. सुमुखी सवैया (२३)

(१) सात जगण और एक लघु तथा एक गुरु

(२) ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ ।।ऽ

(३) मदिरा के पहले एक लघु जोड़ने से सुमुखी बनता है।

हिये वनमाल रसाल धरे, सिर मोर-किरीट महा लसिबो
कसे कटि पीत-पटी, लकुटी कर, आनन पै मुरली रसिबो
कलिंदि के तीर खड़े बल-वीर अहीरन बाँह गये हँसिबो
सदा हमरे हिय-मन्दिर में यह बानक सों करिये बसिबो

१८. किरीट सवैया (२४)

(१) आठ भगण।

(२) ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।

(३) मदिरा के आगे दो लघु जोड़ने से किरीट बनता है।

मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारनि
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारनि

पाहन हौं **तो** वही गिरि को जु भयो कर छत्र पुरन्दर-धारनि
जो खग हौं **तो** बसे**रो** करौं मिलि कालिंदि-कूल कदम्ब की डारनि

१९. दुर्मिल सवैया (२४)

(१) आठ सगण ।

(२) ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ

(३) मदिरा के आरम्भ में दो लघु जोड़ने से दुर्मिल बनता है ।

सखि ! नील नभःसर में उतरा यह हंस अहा ! तरता-तरता
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता-चरता
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी, चलता उनको धरता-धरता
गड़ जायँ न कंटक भूतल के, कर डाल रहा डरता-डरता

२०. अरसात सवैया (२४)

(१) ७ भगण और १ रगण ।

(२) ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ

(३) मदिरा के आगे लघु-गुरु जोड़ने से अरसात बनता है ।

जा थल की**न्हे** बिहार अनेकन ता थल कांकरि बैठि चुन्यौ करै
जा रसना **सों** करी बहु बातनि ता रसना **सों** चरित्र गुन्यौ करै
आलम, जौन-**से** कुंजन में **करी** खेल तहाँ तब सीस धुन्यौ करै
नैंगन में **जे** सदा रहते तिनकी अब कान कहा**नी** सुन्यौ करैं

२१. सुन्दरी सवैया (२५)

(१) ८ सगण और १ गुरु ।

(२) ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ऽ

(३) दुर्मिल के आगे १ गुरु जोड़ने से सुन्दरी बनता है ।

सुख-शान्ति रहे सब ओर सदा, अविवेक तथा अघ पास न आवें
गुण-शील तथा बल-बुद्धि बढ़ें, हठ बैर-विरोध घटें, मिट जावें
सब उन्नति के पथ में विचरें, रति-पूर्ण परस्पर पुण्य कमावें
दृढ़ निश्चय और निरामय होकर निर्भय जीवन में जय पावें

२२. उपजाति सवैया (२२-२६)

विभिन्न सवैया-छन्दों के मेल से बनने वाले सवैया को उपजाति सवैया कहते हैं ।

सुन्दरी और मत्तगयन्द का मेल—

जल की गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े
पोंछि पसेउ बयारि करौ, अरु पाँइ पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े
तुलसी रघुबीर प्रिया-स्रम जानि कै बैठि बिलम्ब लौ कंटक-काढ़े
जानकी नाह को नेह लखो, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढे

(च) वर्णिक मुक्तक छन्द

२३. अनुष्टुप् (८)

(१) प्रत्येक चरण में ८ वर्ण ।
(२) पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा गुरु, सातवाँ वर्ण विषम चरणों में गुरु, तथा सम चरणों में लघु ।

स्वस्तिवाद विरक्तों का और ही कुछ वस्तु है
वाक्यों में उनके होता ईश का एववस्तु है

२४. मनहरण कवित्त या घनाक्षरी (३१)

(१) प्रत्येक चरण मे ३१ वर्ण ।
(२) ८, ८, ८, ७ पर अथवा १६, १५ पर यति ।
(३) अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) नहीं होता ।

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति, कछू बेद ना पढाइहों
मेरो परिवार सब याही लागि राजाजू ! हौ
दीन बित्त-हीन, कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निखाद ह्वै कै बाद न बढाइहौं
तुलसी के ईस राम ! रावरे सों साँची कहौ
बिना पग धोये नाथ ! नाव न चढाइहों

२५. रूपघनाक्षरी (३२)

(१) प्रत्येक चरण में ३२ वर्ण ।
(२) ८, ८, ८, ८ पर या १६, १६ पर यति ।

(३) अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) या दो लघु (।।)

प्रभु-रुख पाइ कै बोलाइ बाल-धरनिहिं
बन्दि कै चरन चहुँ दिसि बैठे घेरि-घेरि
छोटो-सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को
धोइ पाँय पीवत पुनीत बारि फेरि-फेरि
तुलसी, सराहै ताको भाग सानुराग सुर,
बरसै सुमन, जय-जय कहै टेरि-टेरि
बिबुध सनेह-सानी बानी असयानी सुनि
हँसे राघौ जानकी-लखत-तन हेरि-हेरि

(छ) वर्णिक अर्धसम

वियोगिनी

(१) विषम चरणों मे १० वर्ण।

गण—स स ज ग—।।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ऽ

(२) सम चरणों में ११ वर्ण।

गण—स भ र ल ग।।ऽ ऽ।। ऽ।ऽ । ऽ

(३) विषम चरण में तीसरे और चौथे वर्णों के बीच में एक गुरु जोड़ने से सम चरण बनता है।

चिरकाल रसाल ही रहा
जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा
जब हो उस कालिदास की
कविता-केलि-कला-विलास की !